हम क्या चाहते हैं ?

स्वामी विवेकानन्द

हम क्या चाहते हैं

स्वामी विवेकानन्द

सन्मार्ग प्रकाशन, दिल्ली-७

संस्करण : 1980

प्रकाशक : सन्मार्ग प्रकाशन
16, यू० बी० बँगलो रोड दिल्ली-110007
© : सन्मार्ग प्रकाशन
मुद्रक : प्रिंट आर्ट, नवीन शाहदरा, दिल्ली-110032
मूल्य : तीन रुपये

अनुक्रम

अपने विचार से	७
सच्चे अर्थों में मनुष्य बनाने वाली शिक्षा	९
शिक्षा का अभिप्राय	१४
शिक्षा का उत्तम मार्ग	२१
शिक्षा और शिष्य	२७
चरित्र-निर्माण के लिए शिक्षा	३१
धार्मिक शिक्षा	३८
स्त्री शिक्षा	४९
जनसमूह की शिक्षा	५५
संस्कृत-शिक्षा	५८

अपने विचार से

आज की शिक्षा कैसी होनी चाहिए ?

पिछले तीन वर्षों से जिस गुत्थी को मेरा दिल-दिमाग सोचने-सुलझाने में असमर्थ रहा उसे स्वामी विवेकानन्द जी की प्रस्तुत पुस्तक ने कुछ क्षणों में ही सुलझा दिया। मेरे मन में ये विचार खुद गये हैं—

यदि तुम केवल चार अच्छे विचारों को मन में धारण करके उनके अनुसार अपने जीवन तथा चरित्र का निर्माण कर लेते हो तो समझ लो कि तुम उस व्यक्ति से अधिक शिक्षित हो जिसने एक पूरे ग्रंथालय को केवल कंठस्थ ही किया है।

१. हमें आवश्यकता है एक ऐसी शिक्षा की जिससे हमारा चरित्र बने, मानसिक बल बढ़े, बुद्धि का विकास हो और जिसको प्राप्त कर हम अपने पाँवों पर खड़े हो सकें।

२. विदेशी भाषाओं से चुराये हुए विचार रटकर, उन्हें अपने मस्तिष्क में ठूँसकर तथा विश्वविद्यालय की कुछ उपाधियाँ लेकर ही तुम शिक्षित नहीं समझे जा सकते।

३. हर प्रकार की शिक्षा का उद्देश्य केवल 'मनुष्य' बनाना होना चाहिए।

४. जिस अभ्यास से मनुष्य की मानसिक शक्ति का प्रवाह तथा प्रकाश सुखदायक बन सके उसी का नाम शिक्षा है।

ये हैं स्वामी जी के शिक्षा-सम्बन्धी विचार जो आज विश्व-विद्यालय की शानदार दीवारों, चट्टानों की कच्ची भीतों और

शिक्षार्थियों के मन-मस्तिष्क पर से खुद जाने चाहिएँ। शिक्षा मन, आत्मा, जीवन, जगत् एवं मनुष्य को समुज्ज्वल करने वाली वस्तु है। हमारे देश, समाज और व्यक्ति को आत्म-निर्भरता सिखलाने वाली शिक्षा का चिर भूखा होना चाहिए—यही है स्वामी जी की इस पुस्तक का संदेश जिसका शब्द-शब्द, जैसे बोलता हीरा हो, कुबेर का कोष हो!

दो शब्द अनुवाद और अनुवादक के प्रति भी!—आज अनुवाद का काम खूब चल रहा है। अच्छी-अच्छी विदेशी-स्वदेशी भाषा की हिन्दी में अनुचित पुस्तकें छपरही हैं। इससे हमारे ज्ञान-कोष की राशि दिनोंदिन बढ़ेगी, यह निश्चय है। एक मुख्य प्रश्न यह है कि इन अनुवादों की भाषा कैसी हो? किसी भी अनुवाद की पुस्तक में मूल लेखक की महत्ता और उसकी विचारधारा तभी प्रभावशाली बन सकती है जब अनुवादक ने अपने अनुवाद में भाषा के जनप्रिय तत्त्व को कायम रक्खा हो। यह तत्त्व है—शब्दों की सरलता का, शैली, रोचकता एवं अभिव्यक्ति की मौलिकता का। अच्छा अनुवाद वही है जो मूल रचना के सौन्दर्य और प्रभाव में चार चांद लगा दे। प्रस्तुत पुस्तक के अनुवादक महोदय ने इस दृष्टि से सराहनीय सफलता पाई है। उनके शब्द सरल हैं, शैली रोचक है और अभिव्यक्ति का जामा नया है। इसके लिए वह बधाई के पात्र हैं।

—जीवन प्रकाश जोशी

सच्चे अर्थों में 'मनुष्य' बनाने वाली शिक्षा

शिक्षा का महत्त्व

जब मैं यूरोप के अनेक नगरों में गरीबों के लिए सुरक्षा तथा शिक्षा के उत्तम प्रबन्ध देखता था, तो मेरा मन अनायास ही अपने देश के गरीबों की हालत की ओर खिंच जाता था। और मुझे एक प्रकार का रोना-सा आ जाता था। सोचता था कि यह अन्तर क्यों है और कैसे है? फिर मन-ही-मन उत्तर मिला कि यह सब कुछ अच्छी शिक्षा के अभाव के कारण है। योग्य शिक्षा ही एक ऐसी वस्तु है जिससे मनुष्य में आत्मविश्वास पैदा होता है और इस प्रकार उसके मानसिक भाव जागरित हो उठते हैं।

अमरीका के सबसे बड़े नगर न्यूयॉर्क में मैं आयरलैंड-वासियों को आते हुए देखता था। उस समय वह अंग्रेज़ों के पांव-तले कुचले हुए निर्बल, दरिद्र तथा महामूर्ख-से जान पड़ते थे। उनके हाथ में एक लाठी जिसके एक सिरे पर मैले-कुचैले कपड़ों वाली गठरी होती थी। साधारणतः हुआ करती थी। उनकी चाल ऐसी होती थी मानो वह एकदम भयभीत हो गये हों; परन्तु छः ही मास के उपरान्त वही आयरिश लोग कुछ और दिखाई देने लगे। मानो उनकी काया ही पलट गई हो। अब वह छाती तानकर चलते थे। उनकी चाल में भी अन्तर आ गया और उनके मुख पर पहले-जैसा डर भी दिखाई न देता था। यह परिवर्तन कैसे हुआ?

अपने देश में वही आयरिश चारों ओर से घृणा के पात्र समझे जाते थे। मानो सारी प्रकृति उनको ऊँचे स्वर से कह रही हो कि वह सेवक पैदा हुए हैं, अतः सदा सेवक ही बने रहेंगे। कभी अपनी दशा का सुधार न कर पाएँगे इत्यादि ! सदा से ऐसी बातें सुनते रहने के कारण प्रत्येक आयरिश को एक प्रकार का विश्वास-सा हो चला था कि वह वास्तव में ही नीच हैं। परन्तु ज्यों ही वह शिक्षा आदि के हेतु अमेरिका में पहुँचते, त्योंही प्रत्येक ओर से मानो उनके कानों में यह शब्द गूँज उठते कि "सभी प्राणी एक समान हैं, तुम भी हमारे जैसे हो। मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है और वह जो चाहे कर सकता है। इसलिए तुम भी साहस से काम लेकर उठो और अपना भाग्य बदल डालो।" इस प्रकार जब वास्तव में उन लोगों ने सिर उठाया तो देखा कि यह बात सत्य है। बस, फिर क्या था ! उनकी सोई हुई भावनाएँ जाग उठीं, मानो स्वयं प्रकृति ने ही उनसे कह दिया हो, "उठो, खड़े हो जाओ, चल पड़ो, और तब तक चलते रहो जब तक कि 'ध्येय' प्राप्त न हो जाय।"

हमारी शिक्षा निषेधात्मक

जैसी भावात्मक शिक्षा आयरलैंड वालों को उनके अपने देश में दी जाती थी, वैसे ही शिक्षा हमारे यहां बालकों को दी जा रही है। उस शिक्षा में कुछ बातें अवश्य हैं, पर एक ऐसा भयंकर दोष है जो कि उन अच्छाइयों पर पर्दा डाल देता है। वह मनुष्य बनाने वाली शिक्षा नहीं होती। वह पूरे रूप में निषेधात्मक शिक्षा ही है। ऐसी शिक्षा तथा दूसरी प्रकार के अन्य प्रशिक्षण जिनका आधार निषेध पर हो, अति घातक होती है।

हमें केवल यही सिखाया गया है कि हम कुछ नहीं हैं। यह तो

हमें शायद ही कभी बताया जाता है कि हमारे अपने देश में भी कोई महापुरुष पैदा हुए थे। हमें विधान के विषय में कुछ भी नहीं बताया जाता। यहाँ तक कि हम अपने हाथ तथा पाँव तक का भली प्रकार उपयोग करना भी नहीं सीख पाए। इसका परिणाम यह है कि इतने वर्ष की इस शिक्षा से एक मौलिक, विचारवान् मनुष्य तैयार नहीं हो सका है, और यदि कोई ऐसा व्यक्ति हो भी पाया है तो केवल इसलिए कि उसने किसी और स्थान पर शिक्षा प्राप्त की—इस देश में नहीं या फिर ऐसे व्यक्ति ने पुराने ढंग से विद्यापीठ से शिक्षा ग्रहण की होगी।

केवल जानकारी ही शिक्षा नहीं है?

नाना प्रकार की जानकारियाँ ही प्राप्त कर लेना शिक्षित हो जाना नहीं कहलाता। यह वह ढेर नहीं है जो तुम्हारे मुँह में ठूँस दिया गया है और जो सुगमता से जीवन-भर वहाँ पड़ा रहकर गड़बड़ मचाया करता है। हमें आवश्यकता है ऐसे विचारों को ग्रहण करने की जो 'जीवन', 'मनुष्य' तथा 'चरित्र',तीनों के निर्माण में पूरी तरह सहायता दे सकें। यदि तुम केवल पाँच अच्छे विचारों को मन में धारण करके उनके अनुसार अपने जीवन तथा चरित्र का निर्माण कर लेते हो, तो समझ लो कि तुम उस व्यक्ति से अधिक शिक्षित हो जिसने एक पूरे ग्रन्थालय को कंठस्थ ही किया है। यदि शिक्षा का अभिप्राय केवल जानकारी होता तो पुस्तकालय संसार में सबसे बड़े सन्त हो जाते और विश्वकोष महान् ऋषि बन जाते।

विदेशी भाषाओं से चुराये हुए विचार रटकर, उन्हें अपने मस्तिष्क में ठूँसकर तथा विश्वविद्यालयों की कुछ उपाधियाँ लेकर ही तुम शिक्षित नहीं समझे जा सकते हो। तुम्हारी इस

शिक्षा का उद्देश्य केवल यही है न कि शिक्षा समाप्त होने पर कहीं मुन्शी बन गए या वकील हो गए, और यदि अधिक हाथ-पाँव मारे तो डिप्टी मजिस्ट्रेट बन बैठे। पर यह भी तो मुन्शीगीरी का ही दूसरा नाम है। इससे अधिक तो तुम कुछ नहीं बन सकते। इसमें तुम्हें या तुम्हारे देश को क्या लाभ होगा ? तनिक विचार करके तो देखो कि जो भारतवर्ष पूर्णतया अन्न का भण्डार हुआ करता था, आज उसी देश से अन्न के अभाव में कैसी हाहाकार उठ रही है ! क्या तुम्हारी इस शिक्षा से अन्न का यह अभाव दूर हो पाएगा ? हम उस शिक्षा को, जो जनता को जीवन-संग्राम के योग्य नहीं बनाती, जो जनता के चरित्र को ऊंचा नहीं उठाती, जो लोगों को दयावान तथा सिंह-जैसा शक्तिशाली नहीं बनाती—'शिक्षा कैसे कह सकते हैं ?

हम क्या चाहते हैं ?

हमें आवश्यकता है एक ऐसी शिक्षा की जिससे हमारा चरित्र बने, मानसिक बल बढ़े, बुद्धि का विकास हो और जिसको प्राप्त करके हम अपने पाँवों पर खड़े हो सकें। हमारी अभिलाषा है कि हम विदेशी अधिकार से मुक्त होकर अपने ही ज्ञान-भण्डार की अनेक शाखाओं का अध्ययन करें और उनके साथ ही अंग्रेज़ी भाषा तथा विदेशी विज्ञान की जानकारी प्राप्त करें। हमें यन्त्र-सम्बन्धी तथा ऐसी सभी शिक्षाओं की आवश्यकता है जिससे हमारे उद्योग-धन्धे बढ़ें तथा विकसित हों और जिससे मनुष्य नौकरी के लिए तड़पने के स्थान पर अपनी ज़रूरतों को पूरा करने के लिए काफ़ी कमाई कर सके और कुसमय का सामना करने के लिए कुछ जोड़ भी सके।

मनुष्य बनाने वाली शिक्षा ?

हर प्रकार की शिक्षा का उद्देश्य केवल 'मनुष्य' बनाना होना चाहिये। प्रत्येक अभ्यास तथा प्रशिक्षण का लक्ष्य 'मनुष्य का विकास होना चाहिए। जिस अभ्यास से मनुष्य की मानसिक शक्ति का प्रवाह तथा प्रकाश सुखदायक बन सके उसी का नाम शिक्षा है। आज हमारे देश को आवश्यकता है—लोहे के शरीर तथा फौलाद की हड्डियाँ, कभी विश्राम न करने वाली प्रचण्ड मानसिक शक्ति जो कि प्रकृति के गुप्त भेदों को खोल सके, और जैसे भी हो अपने उद्देश्य को पूरा कर सके—बाद में चाहे उसे पाताल में ही क्यों न जाना पड़े, यमराज का भी सामना क्यों न करना पड़े। हम केवल वही धर्म चाहते हैं जो 'मनुष्य' बनाए। हम मनुष्य बनाने वाले विचार चाहते हैं। हमें प्रत्येक क्षेत्र में योग्य 'मनुष्य' बनाने वाली शिक्षा चाहिए।

शिक्षा का अभिप्राय

ज्ञान मनुष्य के लिए स्वाभाविक है

मनुष्य के भीतर छुपी हुई शक्तियों को उजागर करने का नाम ही शिक्षा है। मनुष्य में ज्ञान के लिए लालसा स्वाभाविक ही है ! कोई भी ज्ञान मनुष्य में बाहर से नहीं आता। सब भीतर ही होता है। जब हम कहते हैं कि मनुष्य 'जानता' है, तो वास्तव में यह ठीक नहीं है। यथार्थ में मनोविज्ञान की भाषा में हमें यह कहना चाहिए कि 'वह बताता', 'अनावृत्त' अथवा प्रकट करता है। मनुष्य जो कुछ सीखता है, वह वास्तव में आविष्कार करना ही कहलाता है। आविष्कार का वास्तविक अर्थ है—मनुष्य की अपनी ही आत्मा में छिपे हुए ज्ञान पर से पर्दा हटा देना। हम कहते हैं कि न्यूटन ने 'आकर्षण-शक्ति' का 'आविष्कार' किया। प्रश्न उठता है कि क्या यह 'आविष्कार' एक ओर पड़ा हुआ न्यूटन का ही रास्ता देख रहा था ? उत्तर यही है कि 'नहीं', यह उसके मन में ही था। जब समय आया तो न्यूटन ने उसे जान लिया, अथवा ढूँढ निकाला। संसार का सारा ज्ञान तुम्हारे अपने ही अन्दर है। संसार को आज तक जो भी ज्ञान प्राप्त हुआ है, वह सब मन से ही तो निकला है। संसार तो एक प्रकार से केवल प्रयोगशालामात्र ही है जो कि तुम्हें अपने मन में छुपे हुए ज्ञान का प्रयोग करने के लिए प्रेरणा देती है। वृक्ष पर से सेव के

गिरने ने न्यूटन को अपने मन का अध्ययन करने की प्रेरणा दी। उसने अपनी विचारक शक्तियों को एकत्र किया और फिर उनमें एक विचार को और जोड़ दिया। इसी नये विचार को आज हम 'आकर्षण-शक्ति' के नाम से पुकारते हैं। यह विचार न तो सेव के अन्दर था और न ही पृथ्वी के केन्द्र में छुपा हुआ था।

ज्ञान की प्रक्रिया

इससे प्रमाणित होता है कि ज्ञान चाहे किसी प्रकार का हो, मनुष्य के मन में ही है। कई बार वह प्रकट न होकर ढका रहता है, और जैसे धीरे-धीरे उसपर से पर्दा हटता जाता है तो हम यह समझते हैं कि "हम सीख रहे हैं"। ज्यों-ज्यों यह पर्दा हटता जाता है त्यों-त्यों हमारे ज्ञान में भी वृद्धि होती जाती है। जिस मनुष्य के मन पर से यह पर्दा हटता जा रहा है, वह दूसरों की अपेक्षा अधिक ज्ञानी है और जिसके मन पर इस पर्दे की तहें जमी हुई हैं, वह अज्ञानी है। जिसके मन से यह पर्दा पूर्ण रूप से हट जाता है, वह महाज्ञानी तथा बुद्धिमान् एवं दूरदर्शी हो जाता है। जिस प्रकार चकमक पत्थर में अग्नि छुपी होती है, ठीक उसी प्रकार मनुष्य के मन में ज्ञान छुपा है जो कि अभ्यास-रूपी रगड़ लगने से ही प्रकाशित होता है। सभी प्रकार के ज्ञान एवं शक्तियाँ मनुष्य के भीतर ही हैं। जिन वस्तुओं को हम शक्तियाँ, प्राकृतिक भेद अथवा बल का नाम देते हैं वह सब हमारे भीतर ही हैं। हमारी आत्मा में ही सभी प्रकार के ज्ञान का स्रोत होता है। जो ज्ञान हम बाहर प्रकट करते हैं अथवा अपने भीतर देख पाते हैं, वह आरम्भ काल से ही हमारे अन्दर छुपा हुआ है।

बालक अपने-आपको सिखाता है

सत्य बात तो यह है कि आज तक किसी मनुष्य ने दूसरे को नहीं सिखाया। हमें स्वयं ही अपने-आपको सिखाना पड़ेगा। शिक्षक आदि तो केवल हमें प्रेरणा देने वाले ही हैं, जो कि हमारे मन से छुपे हुए गुरु को जगाने अथवा कार्यवन्त करने में हमारी सहायता करते हैं। इसके बाद सब प्रकार की बातें हमारे ही अभ्यास तथा विचार-शक्ति के द्वारा स्पष्ट हो जाएँगी और फिर हम उनको अपनी आत्मा में ही अनुभव करने लगेंगे। एक विशाल वटवृक्ष, जो आज काफी लम्बी-चौड़ी भूमि पर फैला है, एक ऐसे बीज में छुपा हुआ था जो कि शायद सरसों के दाने से भी बहुत छोटा था। यह इतनी बड़ी शक्ति उस छोटे-से बीच में ही छुपी हुई थी। यह हमसे छुपा हुआ नहीं है कि हमारी विशाल बुद्धि एक छोटे-से 'जीवाणुकोष' में ही सिमटी हुई होती है। जैसे देखने में एक यह अद्‌भुत-सी बात जान पड़ती है, पर है यह सत्य। हममें से प्रत्येक व्यक्ति एक जीवाणुकोष मे पैदा हुआ है और हमारी सब प्रकार की शक्तियाँ उसी में छुपी हुई थीं। यह कहना उचित नहीं है कि वह खाद्यान्न से उत्पन्न हुई हैं, क्योंकि यदि अन्न को इकट्ठा करके एक विशाल पर्वत भी खड़ा कर दिया जाय, तो भी उसमें किसी प्रकार की कोई शक्ति पैदा न हो सकेगी। शक्ति वहीं जीवाणुकोष में थी। भले ही वह प्रकट न होकर भीतर ही छुपी हुई थी, पर थी वह उसी में। इसी प्रकार मनुष्य की आत्मा में असीम शक्ति छुपी हुई है, चाहे यह बात उसके ज्ञान में हो या न हो। इसको जान लेना ही इसका प्रकट होना कहलाता है।

बहुत-से व्यक्तियों में दिव्य ज्योति अवरुद्ध रहती है। वह एक प्रकार से लोहे के एक सन्दूक में बन्द दीपक-जैसी है जिसमें से थोड़ा-सा प्रकाश भी बाहर नहीं आ सकता। मन की पवित्रता

तथा निस्स्वार्थ कर्म द्वारा हम उसकी सघनता को धीरे-धीरे घिसते रहते हैं और अन्त में वह शीशे की भाँति पारदर्शक बन जाता है। श्री राम-कृष्ण इसी प्रकार लोहे-से शीशे में परिणित सन्दूक की भाँति थे जिसके भीतर का प्रकाश बाहर से भी ज्यों-का-त्यों दिखाई देता था।

बालक के स्वाभाविक विकास में सहायता दो

एक बालक को शिक्षा दे पाने में तुम उसी प्रकार असमर्थ हो जिस प्रकार एक पौधे को बढ़ाने में। जिस प्रकार पौधे स्वयं ही अपने आकार-विकार का विकास कर लेते हैं, वैसे ही बालक भी अपने-आपको शिक्षित बना लेता है। तुम इतना अवश्य कर सकते हो कि उसे अपने ही ढंग में ऊपर उठने अथवा आगे बढ़ने में सहायता दे दो। पर तुम जो कुछ भी करोगे वह निषेधात्मक ही होगा, वह विधि-आत्मक नहीं हो सकता। तुम केवल उसके रास्ते में आने वाली बाधाओं को ही हटा सकते हो, जबकि ज्ञान उसके स्वाभाविक रूप से प्रकट हो जाएगा। जमीन से किसी वस्तु के उगने को सुगम बनाने के लिए तुम उसे नर्म बना दो। उसे नष्ट होने से बचाने के लिए उसके चारों ओर बाड़ लगा दो। उस बीज में से उगने वाले पौधे की शारीरिक बनावट के लिए तुम अधिकाधिक उसके लिए अनुकूल मिट्टी, जल तथा वायु का प्रबन्ध कर सकते हो। बस, यहीं पर तुम्हारा कार्य समाप्त हो जाता है। पर वह पौधा इन सब वस्तुओं में से केवल उतना लेगा जितना कि उसके लिए आवश्यक होगा और अपनी ही प्रकृति के अनुसार उसको पचाकर आगे बढ़ेगा। ठीक इसी प्रकार बालक की शिक्षा का हाल है। बालक स्वयं अपने-आपको शिक्षित करता है। जब शिक्षक यह समझकर उसे शिक्षा देता है कि वह उसे

पढ़ा रहा है तो वह सब काम बिगाड़ लेता है। सब प्रकार का ज्ञान बालक के भीतर विद्यमानहै। उसे तो केवल प्रोत्साहन अथवा जागृति की आवश्यकता है, और शिक्षक का बस इतना ही काम है। बालकों के लिए हमें तो केवल इतना ही करने की आवश्यकता है कि अपनी बुद्धि का प्रयोग करके अपने हाथ, पाँव, कान तथा आँखों का उचित ढंग से उपयोग कर सकें।

स्वतंत्र विचार

एक व्यक्ति ने दूसरे को सलाह दी कि गधे को पीटने से वह घोड़ा बन सकता है। इसपर गधे के मालिक ने अपने गधे को घोड़ा बनाने के लालच में इतना पीटा कि बेचारा गधा ही मर गया। कहने का तात्पर्य यह है कि इस समय बच्चों को जबरदस्ती अथवा पीटकर शिक्षित बनाने का जो तरीका प्रचलित है, बन्द कर देना चाहिए। आजकल हमारे बच्चों को स्वतंत्र अथवा प्राकृतिक विकास का अवसर ही नहीं मिलता, क्योंकि उनपर माता-पिता का अनुचित दबाव होता है। प्रत्येक बच्चे में ऐसी अनेक शक्तियाँ हुआ करती हैं, जिनके विकास के लिए उन्हें पूर्ण स्वतन्त्रता की आवश्यकता है। बच्चों का 'सुधार' करने के लिए उनपर जबरदस्ती करना हानि को निमंत्रण देना होता है। यह एक मानी हुई बात है कि यदि किसी को सिंह बनने का अवसर ही न दिया जाय, तो वह सियार ही बन सकेगा। अधिक कुछ नहीं।

विधायक विचार

हमें विधायक विचार अपने सन्मुख रखने चाहिएँ। निषे-

धात्मक विचार मनुष्य को निर्बल बना देते हैं। हम देखते हैं कि जिन बालकों की अपने माता-पिता द्वारा सदा डाँट-डपट पड़ती रहती है, जिनको सदा यही कहा जाता हो कि "तुम कुछ नहीं सीख सकोगे—सदा गधे बने रहोगे," वह बालक सचमुच ही आयु-भर गधे बने रहते हैं। परन्तु यदि उनको पग-पग पर प्रोत्साहन दिया जाय और समय-समय पर उनके साथ सहानुभूति प्रकट की जाय तो निश्चय ही वह शीघ्र उन्नति कर सकेंगे। यदि उनके सामने विधायक विचार रखे जाएँ तो उनमें मनुष्यत्व की भावना पैदा होगी; अतः अपने पाँव पर खड़ा होना सीखेंगे। भाषा हो या साहित्य, काव्य हो या कला, किसी भी विषय में हमें उनके दोष ही नहीं बताते रहना चाहिए बल्कि उन्हें वह नियम बता देने चाहिएँ जिनके आधार पर वह इन बातों को और भी सुचारु ढंग से कर सकें। बालकों की प्रकृति के अनुसार ही उनकी शिक्षा में परिवर्तन भी होना चाहिए। उनकी प्रवृत्तियों के अनुसार ही उन्हें मार्ग दिखाना चाहिए। जो इस समय जहाँ है, उसे वहीं से आगे बढ़ाओ। हम देख चुके हैं कि जिनको बिलकुल निकम्मा तथा निखट्टू समझा जाता था, वह भी श्री राम-कृष्ण देव द्वारा उत्साहित होकर किस प्रकार उन्नति कर गए और किस प्रकार उन्होंने अपनी जीवन धारा बदल ली। उन्होंने कभी भी किसी व्यक्ति की विशेष प्रवृत्तियों को नष्ट नहीं होने दिया। उन्होंने अत्यन्त हीन तथा पतित मनुष्य के प्रति भी आशा तथा उत्साह-पूर्ण बातें कहीं और उनको उन्नति के मार्ग पर ला खड़ा किया।

स्वाधीनता—विकास की पहली शर्त

विकास की पहली शर्त स्वाधीनता ही है। यदि कहा जाय कि मैं अमुक व्यक्ति के उद्धार का उपाय करूँगा, तो यह अति

मूर्खता होगी। हमें चाहिए कि हम ऐसे व्यक्ति से परे हट जाएँ। वह स्वयं अपनी समस्याओं को हल कर लेंगे? हम दूसरों को सुधारने का दम भरने वाले कौन हैं? हम में ऐसा ओछा विचार आया ही कैसे कि हमारा ईश्वर पर भी अधिकार है? क्योंकि हम नहीं जानते कि प्रत्येक आत्मा ईश्वर का ही स्वरूप है? हमें चाहिए कि हम हर मनुष्य को परमात्मा का ही अंग समझें। हम केवल दूसरों की सेवा ही कर सकते हैं—जब कभी हमें अवसर मिले। यदि सौभाग्य से हम भगवान् के किसी अंश की सेवा कर सकें तो हमें अपने-आपको धन्य समझना चाहिए। हमें सन्तुष्ट होना चाहिए कि दूसरों को यह सुअवसर प्राप्त न होकर हमें मिला। ऐसे कार्य को हमें पूजा की भाँति करना चाहिए।

शिक्षा का उत्तम मार्ग

एकाग्रता

केवल मन की एकाग्रता द्वारा ही हम ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं। इसी पर शिक्षा का आधार है। चाहे कोई निम्न श्रेणी का व्यक्ति हो चाहे उच्च कोटि का योगी, सबको ज्ञान प्राप्त करने के लिए मन की एकाग्रता की आवश्यकता होती है। वैज्ञानिक लोग अपनी प्रयोगशाला में एकाग्रचित्त हो, अपनी समस्त शक्तियों की एक केन्द्र पर स्थिर करके तत्त्वों पर प्रयोग करते हैं—इस प्रकार वह उन तत्त्वों के विषय में भली प्रकार तथा सुगमता से जानकारी प्राप्त कर लेते हैं। यही बात ज्योतिषी के बारे में कही जा सकती है। वह भी अपने मन की शक्तियों को एक स्थान पर केन्द्रित करके दूरदर्शी यन्त्र द्वारा अपने लक्ष्य की ओर लगता है। इससे सितारों तथा ग्रहों को अपने सन्मुख देख सकता है और वह उनका भेद जान जाता है। अत: चाहे कोई उच्च कोटि का विद्वान् हो, चाहे नया-नया छात्र हो और चाहे कोई और हो, यदि वह किसी वस्तु अथवा विषय के बारे में जानकारी प्राप्त करना चाहता है तो उसे मन की समस्त शक्तियों को एकाग्र करना ही होगा।

एकाग्रता की शक्ति

किसी व्यक्ति में जितनी अधिक एकाग्रता की शक्ति होगी, उतना ही अधिक वह ज्ञान प्राप्त कर सकेगा। एक चमार को

ही लीजिए। वह यदि एकाग्रचित्त होकर अपना कार्य करेगा, तो जूता अधिक अच्छा बनाएगा या साफ़ करेगा। रसोइया एकाग्र-चित्त होकर अधिक स्वादिष्ट भोजन बना सकेगा। वंज-व्यापार में, ईश्वर-भक्ति में या और भी किसी कार्य में जितनी अधिक एकाग्रता होगी, उतना अच्छा ही वह कार्य सम्पन्न होगा। यही एक ऐसा मार्ग है जिससे प्रकृति द्वार खुल जाते हैं और ज्ञानरूपी प्रकाश बाहर फैल जाता है।

मात्रा का भेद

साधारण मनुष्य को बड़ी-बड़ी भूलों का एकमात्र कारण यह है कि वह अपनी विचार-शक्ति का नव्वे प्रतिशत भाग व्यर्थ में ही खो देता है। अनुभवी मनुष्य कभी भूल नहीं करता। मनुष्य तथा पशु में विचार-शक्ति की एकाग्रता का ही तो एक भेद है। पशुओं में इस एकाग्रता का अभाव है। जो लोग पशुओं को सिधाते अथवा सिखाते हैं, वह भली प्रकार जानते हैं कि पशु सीखी हुई बात को शीघ्र ही भूल जाते हैं, तथा अपना मन किसी विषय पर अधिक देर तक नहीं टिका सकते। बस, यही एक अन्तर है पशु तथा मनुष्य में। एकाग्रशक्ति के कम या अधिक होने के कारण ही मनुष्य-मनुष्य में भेद पड़ जाता है। सबसे निम्न तथा सबसे उच्च गिने जाने वाले मनुष्यों की तुलना करने पर पता लग सकता है कि उनमें भेद केवल एकाग्रता की मात्रा के कारण ही है।

परिणाम

मन की एकाग्रता पर ही किसी कार्य का परिणाम अवि-

लम्बित होता है। कला तथा संगीत आदि में निपुण व्यक्तियों की सफलता का भी यही कारण है। जब मन को एकाग्र करके एक ही विषय पर लगा दिया जाता है तो हमारे भीतर छुपी समस्त शक्तियाँ हमारी दासियाँ बन जाती हैं और हमें सफलता प्राप्त करने में सहायता देती हैं। यूनानियों ने अपनी एकाग्रता का प्रयोग सांसारिक विषयों पर किया था—अतः उनको कला साहित्य आदि में सफलता मिली। इसके विपरीत हिन्दुओं ने आत्मिक शक्तियों को उजागर करने के लिए मन की एकाग्रता का प्रयोग करके योग शास्त्र में सिद्धि प्राप्त की। प्रकृति तो अपना भेद खोल देने को तत्पर है, पर हमें केवल यह जानने की आवश्यकता है कि उसका द्वार किस प्रकार खटखटाया जाय—किस ओर से तथा कैसे प्रहार किया जाय। यह भेद जानने के लिए मन की एकाग्रता की ही ज़रूरत है।

ज्ञान की कुञ्जी

ज्ञानरूपी ताले की केवल एक ही कुंजी है और वह है मन को एकाग्र कर पाने की शक्ति। आज हमारा मन तथा शरीर अनेक प्रकार की बातों में लगा हुआ है। इस प्रकार हम उन सब बातों की ओर एक ही समय में अपना ध्यान करके केवल अपनी शक्तियाँ ही नष्ट कर रहे हैं। ज्योंही हम ज्ञान प्राप्त करने के उद्देश्य से किसी एक विशेष बात पर ध्यान देने की चेष्टा करते हैं, त्योंही नाना प्रकार की व्यर्थ की बातें इधर-उधर से आकर हमारे मन को घेर लेती हैं, सहस्रों चिन्ताएँ आ-आकर उसे निश्चल बना देती हैं। इन सब व्यर्थ की बातों को रोककर किस प्रकार मन को वश में किया जाय, इसी एकमात्र विषय पर राजयोगी सोचते रहते हैं। केवल ध्यान का अभ्यास करने से

मन की एकाग्रता प्राप्त होती है।

मेरे समीप तो शिक्षा का सार ही मन की एकाग्रता है न कि ज्ञान-सम्बन्धी विषयों को एकत्रित करना। यदि मुझे पुनः शिक्षा प्राप्त करने का अवसर मिले तो मैं विषयों की ओर ध्यान न देकर अपने मन को उनसे जुदा करके एकाग्रता की ओर चलाऊँगा, और जब मुझे अपने प्रयास में सफलता मिल जाएगी तभी अपनी इच्छानुसार विषयों का संग्रह करूँगा।

एकाग्रता के लिए ब्रह्मचर्य आवश्यक

बारह वर्ष तक अखंड ब्रह्मचर्य का पालन करने से शक्ति प्राप्त होती है। पूर्ण ब्रह्मचर्य का पालन बलशाली हृदय तथा आत्मा का प्रेरक होता है। वासनाओं को वश में करने योग्य फल मिलते हैं। काम वासना को अध्यात्म शक्ति में परिणित कर लो। अधिक कार्य कर सकने की योग्यता इसी बात पर निर्भर है कि तुम में आध्यात्मिक बल कितना है। जल के तीव्र प्रवाह के द्वारा पनचक्की तथा अन्य यन्त्र चलाए जा सकते हैं। केवल ब्रह्मचर्य का पालन न होने से हमारे देश में प्रत्येक वस्तु नष्ट होती जा रही है। छोटी अवस्था में केवल ब्रह्मचर्य के कठोर व्रत द्वारा हर प्रकार की विद्या सुगमता से ग्रहण की जा सकती है। यहाँ तक कि केवल एक ही बार की सुनी अथवा जानी हुई बात को स्मरण रखने की अचूक शक्ति प्राप्त होती है। ब्रह्मचारी के शरीर तथा मस्तिष्क में कार्य करने की प्रबल शक्ति होती है। बिना पवित्र रहे आध्यात्मिक शक्ति नहीं आ सकती। ब्रह्मचारी को अपनी इस शक्ति के बल पर मानव जाति पर प्रभुता प्राप्त होगी। आध्यात्मिक नेतागण को ब्रह्मचर्य का पालन करने से ही शक्ति प्राप्त हुई थी।

हमें चाहिये कि प्रत्येक बालक को बचपन ही से ब्रह्मचर्य-व्रत के पालन की शिक्षा दें। तभी उसमें श्रद्धा तथा विश्वास पैदा होगा। सदा मन, वचन तथा कर्म द्वारा शुभ कार्य करने को ब्रह्मचर्य कहते हैं। बुरे विचार भी उतने ही बुरे हैं जितने कि बुरे कर्म। अतः ब्रह्मचर्य को मन, वचन तथा कर्म से सदैव शुद्ध रहना चाहिये।

श्रद्धा ही उन्नति का आधार है

हमें एक बार फिर अपने अन्दर सच्ची श्रद्धा पैदा करनी होगी, तथा अपने आत्मविश्वास को पुनः जगाना होगा। तभी हम अपनी वर्तमान समस्याओं को सुलझा सकेंगे। इसी श्रद्धा की आज हमें अति आवश्यकता है। हमारा आपस में जितना श्रद्धा का भेद है, उतना अन्य किसी का नहीं। केवल श्रद्धा के आधार पर ही एक मनुष्य बड़ा तथा दूसरा छोटा बनता है। मेरे गुरुदेव प्रायः कहा करते थे कि जो व्यक्ति अपने-आपको दुर्बल समझता है, वह वास्तव में ही दुर्बल हो जाता है—यह बात अक्षरक्ष सत्य है। हममें यह श्रद्धा उत्पन्न होनी चाहिए। यूरोपियन जातियों में आज जो कुछ विकास की भावना देखते हैं वह केवल श्रद्धा का ही परिणाम है। इसका कारण यह है कि उसका अपने बाहुबल पर विश्वास है, और यदि हम भी अपने आत्मबल पर विश्वास रखें तो क्या परिणाम उससे भी अधिक अच्छा न होगा ?

जैसा सोचोगे, वैसा बनोगे

तुम यह बात भली प्रकार मन में बिठा लो कि जो मनुष्य

दिन-रात यही सोचता है कि मैं कुछ भी नहीं हूँ, उस व्यक्ति से हम कोई आशा नहीं रख सकते। यदि कोई व्यक्ति दिन-रात यही सोचता रहे कि "मैं दीन तथा दुखी हूँ, मैं कुछ नहीं कर सकता," तो वह सचमुच ही ऐसा बन जाएगा। और यदि तुम सोचते हो कि "मैं भी कुछ हूँ, मुझ में भी कुछ शक्ति है," तो सचमुच ही तुम एक दिन शक्तिशाली बन जाओगे। यह एक महान् सत्य है जो कि तुम्हें सदा स्मरण रखना चाहिये। हम सब उस सर्वशक्तिमान् परमात्मा की सन्तान हैं, उसका अंश हैं, फिर हम शक्तिहीन कैसे हो सकते हैं? हम सब कुछ हैं, सब कुछ करने को तैयार हैं और सब कुछ कर भी सकते हैं। हमारे पूर्वजों में ऐसा ही दृढ़ विश्वास था और इसी आत्मविश्वास से प्रेरणा प्राप्त करके वे सभ्यता के शिखर तक पहुँच सके थे। अब यदि उसमें कोई गिरावट आई हो या कोई दोष पाया जाता है तो इसका कारण केवल यह है कि हम धीरे-धीरे अपना आत्म-विश्वास खो बैठे हैं।

इस श्रद्धा अथवा आत्मिक बल के नियमों का प्रचार करना ही मेरे जीवन का ध्येय है। मैं एक बार फिर कहता हूँ कि आत्म-विश्वास मानवता का अति शक्तिशाली एवं आवश्यक अंग है। सदा अपने-आप पर विश्वास रखकर हमें पता चलेगा कि चाहे मनुष्य में बाहरी रूप से कितना ही अन्तर हो—एक तुच्छ बुलबुला और दूसरा पर्वत-जैसा ऊँचा तथा सबल—सबके पीछे अथवा भीतर वही अनन्त सागर है। वही सागर हम सब का आधार है। प्रत्येक शक्ति का महासागर जैसा मेरा है वैसा ही अन्य सब जनों का, इसलिए मैं अपने भाइयों से अनुरोध करता हूँ कि वे अपने बच्चों को यही परम शक्ति प्राप्त करने की शिक्षा दें।

शिक्षक और शिष्य

शिक्षक के निजी जीवन का महत्त्व

मेरे मतानुसार शिक्षा का अभिप्राय है "गुरु के पास रहना।" शिक्षक अथवा गुरु के व्यक्तिगत जीवन से बढ़कर अन्य कोई शिक्षा नहीं हो सकती। शिष्य को बचपन से ही ऐसे गुरु (व्यक्ति) के साथ रहना चाहिए जिसका चरित्र अति पवित्र हो ताकि वह अपने गुरु के जीवन से प्रेरणा पाकर उच्चतम शिक्षा का सजीव आदर्श अपने सामने रखे। हमारे देश में शिक्षा देने का भार सदा से ही त्यागी पुरुषों के कंधों पर रहा है, अतः अब भी यह उत्तरदायित्व उन्हीं को सौंप देना चाहिए।

शिक्षा की पुरानी रीति

हमारे देश की पुरानी शिक्षा-पद्धति आजकल की शिक्षा प्रणाली से सर्वथा भिन्न थी। शिष्यों अथवा विद्यार्थियों को फीस आदि नहीं देनी पड़ती थी। उस समय लोगों के मन में कुछ ऐसी धारणा थी कि ज्ञान एक ऐसी पवित्र वस्तु है जो किसी दूसरे के हाथ बेचनी नहीं चाहिए; अतः ज्ञान का दान दोनों हाथ खोलकर बिना प्रति दाम लिए ही करना चाहिए। गुरुजन अपने विद्यार्थियों से किसी प्रकार की फीस लिए बिना ही उसको अपने

पास रखते थे। केवल इतना ही नहीं, बहुत-से गुरु तो अपने शिष्यों को अन्न तथा वस्त्र तक भी अपने पास से देते थे। ऐसे शिक्षकों के निर्वाह के लिए धनी पुरुषों की ओर से दान दिया जाता था जो कि प्रायः उनके शिष्यों के लिए भी पर्याप्त होता था। पुरातन-काल में शिष्य गुरु के पास हाथ में समिधा लेकर जाते थे और गुरु उनको योग्यता का प्रमाण पाकर उनके कटि प्रदेश में तीन लड़ वाली मुंज-मेखला बाँधने के पश्चात् उनको वेदों की शिक्षा दिया करते थे। इस मेखला को ग्रहण करने का अभिप्राय था कि शिष्य अपने तन, मन और वचन को अपने वश में रखने की प्रतिज्ञा करता है।

शिष्य के गुण

शिक्षक तथा शिष्य के लिए कुछ नियमों का पालन करना आवश्यक है। शिष्य को चाहिए कि पवित्रता, ज्ञान को प्राप्त करने की सच्ची धारणा और परिश्रम की लगन को सदा अपने साथ रखे। विचार, वाणी तथा कार्य की पवित्रता अति आवश्यक है। ज्ञान-लालसा के विषय में पुराना नियम यह है कि हमें जो कुछ चाहिए वही पाते हैं। जिस वस्तु को पाने की हम अपने सच्चे मन से चेष्टा नहीं करते, वह हमें नहीं मिलती। हमें तो अपनी ही उजड्ड प्रकृति के साथ निरन्तर युद्ध करके उसे अन्त में अपने वश में करना होगा। इस विषय में हमें उस समय तक प्रयत्न करते रहना होगा जब तक कि हमारे हृदय में उच्चतम आदर्श के लिए वास्तविक जिज्ञासा न पैदा हो जाय अर्थात् जब तक हमें विजय प्राप्त न हो जाय। जो शिष्य ऐसी धारणाओं को अपने मन में लेकर गुरु के पास जाता है, उसको अन्त में सफलता अवश्य प्राप्त होती है।

गुरु (शिक्षक) के तीन विशेष गुण

गुरु के लिए आवश्यक है कि उसे शास्त्रों (अनेक प्रकार की विद्याओं) का रहस्य अथवा मर्म ज्ञात हो। कहने को तो सारा संसार ही वेद, कुरान और बाइबल पढ़ता है, पर वह केवल पढ़ता ही है—शब्दों का संग्रह ही करता है। जो गुरु शब्दों के चक्कर में पड़कर उन्हीं में लीन रहते हैं वह वास्तविक भेद को नहीं पा सकते। शास्त्रों के यह भेद ही वास्तव में सच्चे गुरु हैं।

निष्कपटता गुरु के लिए दूसरी आवश्यक बात है। प्रायः लोग कहा करते हैं कि "गुरु के चरित्र की ओर ध्यान ही क्यों दिया जाय ?" यह बात ठीक नहीं है। अपने हित के लिए आध्यात्मिक सत्य की खोज करने तथा दूसरों को यही उपदेश देने से पहले मन की पवित्रता नितान्त आवश्यक है। गुरु पूर्ण रूप से शुद्ध हृदय का स्वामी होना चाहिए, तभी उसके उपदेश का शिष्यों पर प्रभाव पड़ेगा और यदि देखा जाय तो गुरु का वास्तव में कर्तव्य ही है कि वह शिष्य में आध्यात्मिक शक्ति उत्पन्न करने में सहायता दे, न कि किसी अन्य शक्ति को उभारने की चेष्टा करे। यह प्रमाणित है कि शिष्य को गुरु से सचमुच एक शक्ति मिलती है। इसलिए गुरु का सदाचारी तथा शुद्धचित्त होना आवश्यक है।

उद्देश्य कैसा हो—गुरु के लिए यह तीसरी आवश्यक बात है। उसे धर्म-शिक्षा-दान के बदलों में धन, मान, नाम आदि स्वार्थपूर्ण बातों की जिज्ञासा नहीं रखनी चाहिए। गुरु के कर्म तो सारी मानव जाति के लिए आदर्श-चिह्न होने चाहिएँ। उसमें मानव प्रेम के भाव होने चाहिएँ। शुद्ध प्रेम द्वारा ही आध्यात्मिक शक्ति का संचार हो सकता है। गुरु में किसी भी प्रकार का स्वार्थ शीघ्र ही सारे प्रयत्नों को निष्फल बना देगा।

गुरु पर विश्वास

हमारा गुरु के साथ ठीक वैसा ही सम्बन्ध है जैसा वंशज का अपने पूर्वज के साथ। हमारा धर्म-भाव उस समय तक पनप नहीं सकता जबतक कि हमारे अन्दर अपने गुरु के प्रति विश्वास, श्रद्धा-नम्रता एवं विनय के भाव न हों। जहाँ-जहाँ गुरु तथा शिष्य के इस सम्बन्ध की उपेक्षा की गई है, वहाँ गुरु केवल बोलने की मशीन बनकर रह जाता है और उसका अभिप्राय अपनी 'दक्षिणा' तक ही सीमित रहता है, और दूसरी ओर शिष्य गुरु के शब्दों को अपने मस्तिष्क में ठूंस लेने की चेष्टा करता रहता है। मानो दोनों के अलग-अलग रास्ते हैं। परन्तु इसके साथ ही यह भी सत्य है कि किसी प्रकार की अन्धी भक्ति करने से मनुष्य में दुर्बलता आ जाती है और प्रायः उसका झुकाव व्यक्तित्व की उपासना की ओर हो जाता है। गुरु की पूजा तो ईश्वर-दृष्टि से अवश्य करो, परन्तु उसकी आज्ञा का पालन आंखें बन्द करके न करो। अर्थात् गुरु से प्रेम तो पूर्ण रूप से करना चाहिए, परन्तु स्वयं भी स्वतन्त्र रूप से कुछ विचार करना आवश्यक है।

शिष्य के साथ सहानुभूति

गुरु को चाहिए कि वह अपनी शक्ति को शिष्य की उन्नति में लगा दे। सच्ची सहानुभूति के बिना योग्य शिक्षा भी नहीं दी जा सकती। किसी की श्रद्धा को डाँवाँडोल करना उचित नहीं—हाँ, यदि हो सके तो उसे कुछ बढ़ाने की चेष्टा करनी चाहिए। सच्चा गुरु तो वह है जो एक ही समय में अपने-आपको मानो अनेक पुरुषों के रूप में प्रकट करने की क्षमता रखता हो, जो शिष्य के साथ घुल-मिलकर उसकी आत्मा में अपनी आत्मा को मिलाकर शिष्य के ही मन द्वारा सब कुछ देख तथा समझ सकता हो। केवल ऐसा ही गुरु वास्तविक शिक्षा प्रदान कर सकता है, अन्य कोई नहीं।

चरित्र निर्माण के लिए शिक्षा

विचार-शक्ति की आवश्यकता

मनुष्य की विभिन्न विचारधाराएँ उसके चरित्र को प्रकट करती हैं। चरित्र उसकी समस्त धारणाओं का योग है। जैसे सुख तथा दुःख मनुष्य की आत्मा पर से होकर गुज़रते हैं, वे उस-पर अपना चिह्न छोड़ जाते हैं। और जिस प्रकार ये चिह्न प्रकट होकर उसके मन से बाहर आते हैं, उसी को चरित्र कहते हैं। हमारे विचारों ने हमें जैसा बनाया है, हम वही हैं। जिस प्रकार लोहे के टुकड़े पर हथौड़े की हल्की चोट पड़ती है उसी प्रकार हमारे विचार शरीर पर चोट करते रहते हैं और उन्हीं के द्वारा जैसा हम बनाना चाहते हैं वैसा ही बन जाते हैं। हमारी वाणी का क्षेत्र तो अति सीमित है, परन्तु विचारों की दौड़ बड़ी-बड़ी दूर तक हुआ करती है। इसलिए हमें अपने विचारों के प्रति बहुत सावधान रहना चाहिए।

सुख और दुःख का स्थान

चरित्र-निर्माण में भलाई तथा बुराई दोनों बराबर योग देते हैं और प्रायः देखा गया है कि मनुष्य को दुःख में अधिक शिक्षा मिलती है। संसार के महापुरुषों के चरित्र का अध्ययन

करने से हम देखते हैं कि प्राय: सुख तथा सम्पत्ति की अपेक्षा दु:ख तथा दरिद्र की स्थिति में उन्होंने अधिक योग्य शिक्षा पाई है, स्तुति के स्थान पर आघात ही उनके अन्दर छुपी ज्ञानरूपी अग्नि को प्रचंड करने में सहायक हुए हैं। धन-धाम विलास की गोद में पलकर, सुन्दरतम शय्या पर विश्राम करके भला कौन महान् बन सकता है ! जब हृदय में वेदना अधिक बढ़ती है, जब दु:खों की आँधियाँ मनुष्य को चारों ओर से घेर लेती हैं, तब आभास होता है कि साहस तथा आशारूपी प्रकाश मन्द होता जा रहा है। तभी इन भयंकर झंझटों के मध्य से ज्ञानरूपी ब्रह्मज्योति का प्रकाश होता है ।

कर्म का फल

यदि मन को एक झील माना जाय तो हम देखेंगे कि उसमें उठने वाली प्रत्येक लहर जब दब जाती है तो वह वास्तव में नष्ट नहीं होती, बल्कि मन पर एक विशेष चिह्न छोड़ जाती है और ऐसा आकार बना जाती है जिससे कि वह लहर दुबारा फिर उठ सके। इसी प्रकार हमारा प्रत्येक कार्य तथा विचार हमारे मन पर एक चिह्न छोड़ जाता है। यद्यपि यह चिह्न दिखाई नहीं देते, फिर भी अन्दर-ही-अन्दर अज्ञात रूप से अपना अपना कार्य करते रहते हैं। हम किसी भी समय जो कुछ होते हैं, वह सब इन्हीं चिह्नों का निर्माण होता है। अत: प्रत्येक मनुष्य का चरित्र ऐसे ही संस्कारों द्वारा नियमित किया जाता है। यदि शुभ समाचार प्रधान रहें तो मनुष्य का चरित्र अच्छा होता है और बुरे संस्कारों का परिणाम बुरा चरित्र होता है। जब कोई मनुष्य लगातार बुरे शब्द सुनता रहता है, गन्दे विचारों से घिरा रहता है, बुरे कर्म करता रहता है तो उसके मन

पर भी बुरे संस्कारों का साम्राज्य हो जाता है, जो उसके बिना ही समस्त विचारों तथा कर्मों पर अपना प्रभाव डाल देते हैं। वास्तव में ये बुरे संस्कार निरन्तर अपना कार्य करते रहते हैं। यह बुरे संस्कार ही सदा उसे बुरे कर्म के लिए उत्तेजित करते रहते हैं और अन्त में वह इन संस्कारों का एक दासमात्र बनकर रह जाता है।

चरित्र-निर्माण

इसी प्रकार यदि कोई मनुष्य शुभ विचार रखता है और अच्छे कर्म करता है तो उसके मन पर इन संस्कारों का प्रभाव भी अच्छा पड़ता है मानो उसकी इच्छा न होने पर भी यह शुभ संस्कार उसे शुभ कर्म करने के लिए बाध्य करते रहते हैं। जब मनुष्य इतने शुभ कार्य कर चुकता है कि उसकी इच्छा न होते हुए भी उसके अन्दर शुभ कर्म करने की तीव्र अभिलाषा उत्पन्न हो जाती है, तब यदि वह बुरे काम करना भी चाहे तो शुभ कर्मों का प्रबल प्रभाव उसे उसी समय रोक देगा। फिर वह अपने ही संस्कारों की कठपुतली बन जाएगा। जब मनुष्य इस स्थान पर पहुँच जाता है तभी चरित्रवान् एवं प्रतिष्ठित कहलाता है। किसी मनुष्य की परख उसके बड़े कार्यों को देखकर नहीं की जा सकती बल्कि उसके साधारण कार्य ही उसके चरित्र के प्रतीक होते हैं जिनके द्वारा एक महान् पुरुष के वास्तविक चरित्र का अनुमान लगाया जा सकता है। कभी-कभी बड़े अतिहीन मनुष्य को भी किसी-न-किसी रूप में 'बड़ा' बना देते हैं। परन्तु वास्तव में बड़ा तो वह है जिसका चरित्र निरन्तर तथा सब परिस्थितियों में महान् रहता है।

अच्छा और बुरा भाव

इस प्रकार जब मन में बहुत-से संस्कार एकत्रित हो जाते हैं तो वे स्वभाव अथवा अभ्यास का रूप धारण कर लेते हैं। कुछ लोग कहते हैं कि "आदत दूसरा स्वभाव है।" परन्तु वास्तव में वह प्रथम स्वभाव ही है और इसी पर मनुष्य का सारा स्वभाव निर्भर है। हमारा इस समय का स्वभाव हमारे पिछले अभ्यास का परिणाम है। यह जान लेने पर कि सब कुछ आदत का ही प्रभाव है, हमें कुछ संतोष प्राप्त होता है, क्योंकि यदि अभ्यास के योग से ही हमारा आज का स्वभाव बना हो तो हम जिस समय चाहें उस अभ्यास को नष्ट भी कर सकते हैं। बुरी आदत अच्छी आदत से बदली जा सकती है। सदा शुभ कार्य करने तथा पवित्र विचार सोचने से ही बुरे तथा नीच संस्कार दूर किये जा सकते हैं। यह कभी नहीं कहना चाहिए कि अमुक व्यक्ति इतना गिर चुका है कि उसका सुधार हो ही नहीं सकता। क्योंकि वह व्यक्ति तो केवल एक विशेष प्रकार के चरित्र तथा अभ्यास के मानो स्मृति-चिह्न है, जो कि नवीन एवं अच्छे अभ्यास द्वारा दूर हटाए जा सकते हैं। अतएव चरित्र पिछले अभ्यास का प्रतीक-मात्र है और इसी अभ्यास के द्वारा क्रमशः चरित्र का निर्माण होता रहता है।

हम स्वयं अपने भाग्य के निर्माता हैं

सब बुराइयों का कारण हममें ही है, किसी प्राकृतिक मनुष्य को दोष देना उचित नहीं। हमें न तो निराश होने की आवश्यकता है और न ही यह सोचने की, कि जबतक हमें कहीं से आश्रय नहीं मिलता तब तक हम अपनी हीन अवस्था से छुटकारा नहीं

पा सकते। हमारी स्थिति रेशम के कीड़े के समान है, जो स्वयं ही सूत निकालकर कोष बनाता है और फिर स्वयं ही उसके भीतर फँस जाता है। संस्कारों का यह जाल अपने चारों ओर हमने स्वयं ही बना रखा है। सहायता के लिए हम इसलिए पुकार करते हैं कि हम अपने अज्ञान के कारण यह अनुभव करने लग जाते हैं कि हम निस्सहाय हैं। परन्तु सहायता कहीं अन्य स्थान से नहीं आती ? वह तो हमारे भीतर से ही आती है, चाहे संसार के सब देवताओं को पुकारते रहो। मैं भी वर्षों तक देवताओं को पुकारता रहा परन्तु अन्त में अनुभव किया कि मुझे जो सहायता मिल रही है वह देवताओं से नहीं बल्कि मेरे अन्दर से ही आ रही है। जिस भ्रम के कारण इतने दिन तक अनेक प्रकार के कार्य करता रहा, उसे दूर करना पड़ा अर्थात् अपने चारों ओर जो जाल मैंने बुन रखा था उसे स्वयं ही काट फेंकना पड़ा। यद्यपि मैंने अपने जीवन में अनेक गलतियाँ की हैं, यद्यपि यह भी सत्य है कि आज मैं जो कुछ भी हूँ वह इन्हीं गलतियों के कारण से हूँ। मेरा यह अभिप्राय कदापि नहीं कि तुम भी घर जाकर गलतियाँ करनी आरम्भ कर दो, मेरे इस कथन का इस प्रकार का उल्टा अर्थ मत निकालो—पर साथ ही तुम अपनी पिछली गलतियों के कारण निराश मत होओ।

अज्ञान गलतियों का मूल कारण है

दुर्बलता के ही कारण हमसे गलतियाँ होती हैं, और हम दुर्बल इसलिए हैं कि अज्ञान के अंधेरे में फँसे हैं। हम स्वयं ही अपने-आपको इस अंधेरे में फँसाते हैं। हम स्वयं अपने हाथों को आँखों पर रखकर "अन्धेरा है, अन्धेरा है" चिल्लाते हैं, परन्तु हाथ उठाते ही प्रकाश ही प्रकाश दिखाई देता है। मनुष्य की

आत्मा प्रकृति रूप से स्वयं ही प्रकाश है इसलिए हमारे भीतर प्रकाश सदैव रहता है। आजकल के वैज्ञानिक भी तो यही कहते हैं कि इच्छा ही क्रम विकास का कारण है। जीव करना तो कुछ चाहता है, परन्तु परिस्थितियाँ उसके अनुकूल नहीं होतीं और इसलिए अपनी इच्छाओं को पूरा करने के हेतु नये शरीर का निर्माण करता है। अतः स्वयं जीवधारी ही अपनी इच्छा-शक्ति के अनुसार निर्माण करता है। अपनी इच्छा-शक्ति का निरन्तर प्रयोग करते रहने से मनुष्य स्वयं ऊपर उठता जाएगा। अतएव इच्छा-शक्ति सर्वशक्तिमान् है। प्रश्न उठता है यदि वह सचमुच ही सर्वशक्तिमान् है तो फिर मैं सब कुछ क्यों नहीं कर सकता? पर यह तो केवल अपनी क्षुद्र आत्मा के गोलाकार में ही सोचता हुआ अपनी तुच्छ जीवाणु की अवस्था से लेकर मनुष्य शरीर तक के सारे जीवन जाल की ओर देखो। यह सब किसने बनाया? केवल हमारी इच्छा-शक्ति ने ही। जिस शक्ति ने हमें इतना ऊँचा उठाया, उसको सर्वशक्तिमान् स्वीकार करने में हमें क्या बाधा हो सकती है? यदि चरित्र अच्छा हो और इच्छा-शक्ति को सबल बनाया जाय तो वह हमें और भी ऊपर ले जा सकती है।

स्वयं अपने चरित्र को बनाओ

यदि तुम घर में बैठे अपनी गलतियों का रोना रोते रहो तो उससे तुम्हारा कोई भला न होगा, बल्कि उससे दुर्बलता अधिक बढ़ेगी। चिरकाल से बन्द अंधेरे कमरे में जाकर यदि तुम चिल्लाने लगो कि "हाय-बड़ा अन्धेरा है, बड़ा अन्धेरा है" तो क्या तुम्हारे इस चिल्लानेमात्र से अन्धेरा दूर हो जाएगा? दियासलाई जलाते ही अन्धकार जाता रहेगा। इसी प्रकार यदि तुम जीवन-भर शोक करते रहो—"मैं बहुत संतुष्ट हूँ, मैंने अनेक दुष्कर्म किए, बहुत

गलतियां कीं''—तो उससे लाभ क्या होगा ? किसी को यह बताने की आवश्यकता नहीं कि हम में बहुत दोष हैं। केवल ज्ञान-रूपी दियासलाई (अग्नि) जलाने की आवश्यकता है, फिर शीघ्र ही पाप कट जाएगा। अपने चरित्र का निर्माण करो और उज्ज्वल तथा शुद्ध प्राकृतिक स्वरूप को प्रकाशित करो और साथ ही अन्य मनुष्यों के भीतर सोई हुई उनकी आत्मा को जगाओ।

धार्मिक शिक्षा

सन्तों की पूजा

धर्म तो शिक्षा के लिए पहली आवश्यकता है। धर्म से मेरा अभिप्राय मेरा या किसी व्यक्ति विशेष का धर्म नहीं है, बल्कि वास्तविक तथा सच्चे तत्त्वों को जनता के सम्मुख रखने से है। पहले तो हमें उन महापुरुषों के जीवन को लोगों के सामने रखना चाहिए जो कि इन सनातन सत्यों को अपने जीवन में प्रयोग करके सिद्ध कर गए हैं, जैसे श्री रामचन्द्र, श्री कृष्ण, श्री हनुमान् तथा श्री रामकृष्ण आदि। आजकल के समय को श्री कृष्ण की मुरली की अपेक्षा उनकी गीता की कहीं अधिक आवश्यकता है। गीता की पूजा घर-घर में हो, ऐसा चक्कर चला दो। आज हमारे देश को—हम को एक ऐसे प्रभावशाली वीर की आवश्यकता है, जिसकी नस-नस में रजोगुण की लहर उठ रही हो, जो सत्य की खोज में अपने जीवन की बाज़ी लगा दे, और जिसके पास बुद्धि-रूपी तलवार तथा वैराग्यरूपी ढाल हो। आवश्यकता है ऐसे वीर तथा योद्धा की जो युद्ध-क्षेत्र में साहस को न जाने दे।

सेवा का आदर्श

आज तुम्हें श्री हनुमान् जी के चरित्र को अपनाना होगा।

वे किस प्रकार अपने स्वामी (श्री रामचन्द्र जी) की आज्ञानुसार विशाल सागर को लाँघ गए। वे जितेन्द्रिय थे, उनकी प्रतिभा निराली थी, और जीवन तथा मृत्यु का तो उनके लिए कोई महत्त्व ही न था। इसी प्रकार अब तुम्हें भी अपना जीवन दास-रूपी भक्त के इस उच्च आदर्श पर खड़ा करना पड़ेगा। उसी के प्रभाव से धीरे-धीरे अन्य आदर्श स्वयं जीवन के सन्मुख आकर प्रकाशित हो जाएँगे। गुरु के शुभ चरणों में पूर्ण रूप से आत्म-समर्पण तथा पूर्ण ब्रह्मचर्य ही सफलता की एकमात्र कुञ्जी है। हनुमान् जी एक ओर तो सेवादर्श के लिए माने हुए हैं और दूसरी ओर वह वीरता में भी किसी से कम न थे। उनके आगे सारा संसार श्रद्धा तथा भय से सिर झुकाता है। श्री राम के हित के लिए वह अपनी जान तक का बलिदान करने को तत्पर रहते थे। उन्हें श्री राम की सेवा में जुटे रहने के अतिरिक्त और कोई कार्य सूझता ही न था। केवल उनकी आज्ञा का पालन करना ही हनुमान् जी के जीवन का लक्ष्य था। आज भी हमें ऐसी ही भक्ति-भावना की आवश्यकता है।

गम्भीर रणभेरी बजने दो

आजकल के समय में गोपियों तथा श्री कृष्ण की रास-लीलाओं की चर्चा करना उचित नहीं है! केवल वंशी बजाने तथा सुनने से देश का उद्धार न होगा। आज करतलें बजा-बजाकर तथा कीर्तनों में नाच-नाचकर समस्त जाति अवनति होती जा रही है। जिस पवित्र साधना को प्राप्त करने के लिए सर्व-प्रथम पवित्र तथा शुद्ध हृदय की आवश्यकता है, उसी की नकल करने से हम तमोगुण में डूबे जा रहे हैं। हमारे देश में नगाड़े, बिगुल पर्याप्त मात्रा में मिलते हैं। क्यों इनकी गम्भीर ध्वनियाँ

नवयुवकों के कानों में नहीं पहुँचाई जातीं?. बचपन से भजन-कीर्तन आदि स्त्रैण संगीत में भाग लेते-लेते हमारे युवक भी 'स्त्रियाँ' बनते जा रहे हैं। हमारा देश स्त्रियों का देश बनता जा रहा है। अतः अब तो इस देश में डमरू नाद बजानी है—नगाड़े पर चोट लगाकर सारे देश में 'युद्ध' की ध्वनि फैलानी है और 'हर-हर महादेव', आदि गम्भीर नादों द्वारा सारी दिशाओं में गूँज फैलानी है। उचित यह है कि मनुष्य के हृदय को कोमल बना देने वाले संगीत अब कुछ समय के लिए स्थगित कर दिए जाएँ। अब तो लोगों को ध्रुव-राग सुनने तथा सुनाने की आदत डालनी है।

उत्तेजना देने वाले वैदिक मंत्रों की महिमा तथा गर्जना द्वारा भारत में फिर से जीवन का संचार करना होगा। प्रत्येक विषय में वीरों को महत्त्व देना होगा, उनके कठोर भाव को मान्यता देनी होगी। यदि हम अपने चरित्र का संगठन ऐसे ही आदर्शों की नींव पर बनाएँ तो हम में अनेक प्रकार के अन्य गुण स्वयं ही आ जायेंगे। परन्तु एक बात का सदा ध्यान रखना होगा कि अपने आदर्श से रत्ती-भर भी इधर-उधर न हो पाएँ। साहस कभी न हारें। अपने जीवन-सम्बन्धी प्रत्येक व्यवहार में हमें सदैव उच्च चरित्र तथा साहस को अपने साथ रखकर चलना चाहिये। हमारे मन में दुर्बलता कदापि न घुसने पाए। 'महावीर' तथा काली माई का स्मरण करते ही सब दुर्बलता दूर भाग जाएगी।

नया धर्म

पुराने धर्म तो हमें बताते हैं कि ईश्वर में विश्वास न रखने वाला मनुष्य नास्तिक होता है, परन्तु आज का नया धर्म कहता है कि नास्तिक वह है जिसका अपने-आपमें विश्वास नहीं। इस

विश्वास का अभिप्राय केवल 'स्वयं' अथवा 'मैं' से ही सम्बन्धित नहीं है बल्कि प्राणिमात्र में विश्वास होना चाहिए। क्योंकि हम सब का स्वरूप एक ही है। अपनी आत्मा से प्रेम का अर्थ है सब प्राणियों—संसार की सब वस्तुओं से प्रेम। क्योंकि वास्तव में सब एक ही स्वरूप है। यही आत्मविश्वास हमारा सबसे बड़ा साथी एवं सहायक होता है। यदि इस आत्मविश्वास का अधिक प्रचार हुआ होता और उसी के द्वारा संसार के कार्य किए जाते, तो मेरा पूर्ण विश्वास है कि आज तक संसार की बहुत-सी बुराइयों का नाम तक भी न होता। विश्व के इतिहास में आज तक जितने भी महापुरुष तथा स्त्रियाँ हो गुजरी हैं उन सबको अपना कार्य करने के लिए इसी आत्मविश्वास की शक्ति से ही प्रेरणा मिली थी। वह महान् इसलिए बन पाए कि जन्म से ही उनको विश्वास था कि वह महान् बनने के लिए ही पैदा हुए हैं।

शक्ति

उत्तम शक्ति ही धर्म है, पुण्य है और दुर्बलता पाप। सब प्रकार की दुर्बलताओं तथा पापों का मूल कारण ही बल का अभाव है, और दुर्बलता ही बुरे कर्मों को करने की प्रेरणा देती है, यही स्वार्थभाव जड़ है। यदि एक मनुष्य दूसरे को चोट पहुँचाता है, तो वह भी दुर्बलता के कारण। प्रत्येक मनुष्य को यह जानना चाहिए कि वह कौन है और दिन-रात उसे 'सोऽहम् सोऽहम्' का जाप करना चाहिए। माता के दूध के साथ-साथ उसे 'सोऽहम्'-रूपी शक्ति की भावना भी पी लेनी चाहिए। फिर उसी शक्ति को प्राप्त करके वह अपने अन्दर ऐसी शक्तियों का संचार कर पाएगा जो कि संसार ने कभी देखी भी न होगी।

सत्य

सत्य बात का साहसपूर्वक प्रचार करना चाहिए। सत्य का स्वभाव है ; अतः सत्य सनातन है। जिन बातों अथवा वस्तुओं द्वारा तुम शरीर, आत्मा तथा बुद्धि से दुर्बल बनते हो, उनका एकदम परित्याग कर दो। उनमें जीवन-शक्ति का अभाव है, इसलिए उसे विष समझकर स्वीकार नहीं करना चाहिए। सत्य से तो बल, पवित्रता तथा ज्ञान प्राप्त होता है। सत्य वही है जिससे शक्ति मिले और जिससे हृदय का अन्धकार दूर होकर मन में स्फूर्ति भर जाय। अब एक बार फिर से उपनिषद्‌रूपी बलप्रद आलौकिक दर्शन-शास्त्र की शरण लेनी होगी। सत्य जितना महान् है उतना ही अपने अस्तित्व-जैसा सहज भी। जिस प्रकार अपना अस्तित्व प्रमाणित करने के लिए अन्य किसी वस्तु की आवश्यकता नहीं, उसी प्रकार सत्य भी किसी प्रमाण का अभिलाषी नहीं। उपनिषदों के सत्य को अपनाकर जब उन्हें व्यवहार में लाया जाएगा तो निश्चय ही भारत का उद्धार हो जाएगा।

शारीरिक बल

हमारे दुःखों का एक बड़ा कारण हमारी शारीरिक दुर्बलता है। हम आलसी हैं और मिलकर कोई कार्य नहीं कर सकते। हम कई बातों को तोते को भाँति रटते तो हैं पर उनका प्रयोग अपने व्यवहार में नहीं करते। यह तो एक प्रकारसे हमारा स्वभाव ही बन गया है, और इसका एकमात्र कारण है हमारी दुर्बलता। इस प्रकार दुर्बल हृदय से कोई कार्य नहीं हो सकता। अतः उसकी दुर्बलता को दूर करके उसे सबल बनाना होगा। सबसे पहले हमारे नवयुवक बलवान बनने चाहियें। मेरे नवयुवक

मित्रो ! पहले तुम बलवान बनो। धर्म पीछे आ जाएगा। मैं तुमको यही परामर्श दूँगा। आज के युग में गीता के अभ्यास की अपेक्षा फुटबाल आदि खेलों के द्वारा स्वर्ग के अधिक निकट पहुँच जाओगे। यदि तुम्हारी भुजाएँ बलवान होंगी तो तुम गीता को अधिक अच्छी तरह समझोगे। यदि तुम्हारा रक्त अधिक शक्तिशाली है तो तुम श्री कृष्ण की महिमा और अपार शक्ति को अधिक अच्छी तरह समझ पाओगे। जब तुम अपने पैरों पर दृढ़ता से खड़े होगे तो तुम भी अपने-आपको मनुष्य समझ सकोगे और उपनिषदों का ज्ञान भली प्रकार प्राप्त करके आत्मा की शक्ति को जान सकोगे।

निर्भयता

मैं उपनिषदों के प्रत्येक पन्ने पर 'बल' की महिमा देखता हूँ। संसार में केवल यही एक साहित्य है जिसमें 'आभ' अर्थात् निर्भय शब्द का प्रयोग अनेक स्थानों पर मिलता है। संसार के अन्य किसी भी धर्म में ईश्वर अथवा मनुष्य के विषय में यह विशेषण नहीं लगाया गया है। मैं बहुधा पुराने जमाने के उस यूनानी सम्राट् सिकन्दर के चरित्र को देखता हूँ। मुझे ऐसा लगता है मानो वह महाशक्तिशाली सम्राट् सिन्धु नदी के किनारे पर खड़ा होकर हमारे ही देश के एक अरण्यवासी वृद्ध तथा नग्न संन्यासी के साथ वार्तालाप कर रहा है—सम्राट् उसकी ज्ञान-शक्ति से प्रभावित होकर उसे रुपये-पैसे तथा मान-प्रतिष्ठा का लोभ देकर यूनान चलने के लिए कह रहा है और वह संन्यासी उसकी बातों को हँसी में उड़ाकर उसके साथ यूनान जाना अस्वीकार कर रहे हैं। इसपर सम्राट् अपनी राजसत्ता के मद में आकर उन्हें चेतावनी देता है कि यदि वह न चलेंगे तो उन्हें जान से

मार दिया जायेगा। वह महापुरुष खिलखिलाकर हँसते हुए उत्तर देने हैं कि "इससे अधिक झूठी बात तुमने पहले कभी नहीं कही। मैं तो अजन्मा और अविनाशी हूँ। मुझे कौन मार सकता है।" देखा ! इसे कहते हैं बल !

शक्ति की खान—उपनिषद्

अनेक विषय हमें दुर्बल बनाते हैं, अनेक कहानियाँ तथा उपन्यास भी हैं। हम सब में एक ही रक्त का प्रवाह है। हमारा सब का जीवन-मरण एक है। इसीलिए मैं बार-बार इस बात को दुहराता हूँ कि हमें शक्ति—और केवल शक्ति की आवश्यकता है। उपनिषद् शक्ति की खान हैं जिनमें ऐसी शक्ति विद्यमान हैं कि वे सारे संसार को तेजस्वी बना सकते हैं। उनके द्वारा समस्त संसार का पुनरोद्धार हो सकता है। वे तो सब जातियों तथा भिन्न-भिन्न सम्प्रदायों के दुर्बल तथा हीन व्यक्तियों को पुकारकर अपने पाँव पर खड़ा होने तथा मुक्ति प्राप्त करने की शिक्षा देते हैं। मुक्ति का अर्थ है—स्वाधीनता—देह-सम्बन्धी स्वाधीनता, मन तथा आत्मा की स्वाधीनता—और यही उपनिषदों का मूल मंत्र है।

साक्षात्कार ही धर्म है

परन्तु शास्त्र हमें धार्मिक नहीं बना सकते। हो सकता है कि हम संसार की समस्त की समस्त पुस्तकें पढ़कर भी धर्म या ईश्वर के सम्बन्ध में एक भी अक्षर न समझ सकें। भले ही हम जीवन-भर विचार करते रहें, तर्क करते रहें, पर जब तक हम स्वयं सत्य का अनुभव न करें, हमें उनका कुछ भी पता नहीं लग सकता। कोई

मनुष्य कुछ-एक पुस्तकें पढ़कर ही चीर-फाड़-सम्बन्धी चिकित्सिक नहीं बन जाता। केवल एक नक्शा दिखाकर किसी देश को देखने की अभिलाषा पूरी नहीं की जा सकती। नक्शा तो केवल इतना कर सकता है कि वह देश के विषय में और भी अच्छी तरह जानने इच्छा पैदा कर दे। बस, इससे अधिक उसका कोई मूल्य नहीं। मन्दिर अथवा गिरजाघर, पुस्तकें अथवा विधियाँ तो केवल धर्म प्राप्त करने के लिए प्रारम्भिक अभ्यास ही कराते हैं। उनसे आध्यात्मिक विषय का विद्यार्थी अगली सीढ़ियों पर पाँव रखने का बल प्राप्त करता है। धर्म किसी सिद्धान्त अथवा मत वाद में नहीं छुपा है। हमें यह जानकर कि हम आत्मा हैं तद्रूप बन जाना चाहिए। इसी में धर्म है

हृदय को सुसंस्कृत बनाओ

संभव है कि हम संसार के सबसे बड़े मनीषी बन जायें, पर फिर भी यह बात निश्चित नहीं है कि हम ईश्वर के उच्चतम बौद्धिक शिक्षा प्राप्त किए हुए विद्वानों में अनेक ऐसे हैं जो धार्मिक नहीं हैं। पाश्चात्य सभ्यता के अनेक दोषों में से एक यह है कि वहाँ पर हृदय की ओर ध्यान दिए बिना ही बौद्धिक शिक्षा दी जाती है। ऐसी शिक्षा से तो मनुष्य और अधिक वेग से स्वार्थ की ओर भागता है। जब मस्तिष्क तथा हृदय में भेद-भाव आ जाय, द्वन्द्व चल पड़े, तो हृदय को ही अधिक महत्त्व देना चाहिए। हृदय ही हमें ऐसे स्थान पर पहुँचाता है जो बुद्धि की सीमा से परे है। हृदय तो बुद्धि के और भी परे वहाँ जा पहुँचता है जिसे आत्मा की प्रेरणा कहते हैं। अतः सदैव हृदय की ही बातों को मान्यता देनी चाहिए, क्योंकि हृदय से ईश्वर की आवाज़ निकलती है।

धर्म का अन्धा अनुराग एक रोग है

धर्म के द्वारा मनुष्य को असीम प्रेम का अनुभव हुआ है। संसार के अनेक उदार एवं शान्तिप्रद सन्देश धार्मिक पुरुषों द्वारा ही दिए गए हैं, और इन्हीं में से कुछ जनों द्वारा ऐसे वाक्य भी कहे गए हैं जो घोर निन्दा के योग्य हैं। संसार का प्रत्येक धर्म इसी बात का प्रचार करता है कि केवल उसी के सिद्धान्त सत्य हैं—अन्य कोई नहीं। कहीं-कहीं तो अपना धर्म बलपूर्वक मनाने के लिए तलवारें तक निकाल ली जाती हैं। ऐसी बातें दुष्टता के कारण नहीं की जातीं, बल्कि इसका कारण है—मानव-मन का धर्म के प्रति अन्धविश्वास, जिसे एक रोग कहा जाय तो बुरा न होगा। फिर भी इन धर्मों और मतों के आपसी झगड़ों के होते हुए भी समय-समय पर शान्त और समानता का प्रचार करने वाली शक्तिशाली आवाजें उठती रही हैं।

समन्वयाचार्य श्री रामकृष्ण

धीरे-धीरे ऐसा अवसर आ गया था जब ऐसे मनुष्य जन्म लें जो समानता में विश्वास रखें और दिखाएँ कि सारा संसार एक ही आत्मा, एक ही शक्ति (ईश्वर) द्वारा चलाया जा रहा है और सब प्राणियों में एक ही ईश्वर का स्वरूप विद्यमान है। वे पुरुष जन्म लें जिनका हृदय दरिद्र तथा निर्मल असहायजनों की अवस्था को देखकर पानी-पानी हो जाय और जो अपनी आलौकिक एवं तीव्र बुद्धि-द्वारा न केवल भारत ही बल्कि समस्त देशों के भी परस्पर विरोधी मत-मतान्तरों में समान्यता की स्थापना करे। ऐसे एक पुरुष का जन्म हुआ और मैंने सौभाग्य से उनके चरणों में बैठकर कई वर्ष तक शिक्षा भी ग्रहण की है। गुरुदेव

ने मुझे सिखाया कि संसार के विभिन्न धर्म एक-दूसरे के परस्पर विरोधी कदापि नहीं हैं—बल्कि वह तो सब एक ही सनातन-धर्म के पृथक्-पृथक् रूप हैं। श्री रामकृष्ण ने कभी किसी व्यक्ति के विरुद्ध कोई बात नहीं कही। यह उनकी अपूर्व सहिष्णुता का ही कारण था कि प्रत्येक धर्म वाला ऐसा अनुभव करता था कि ये उसी के धर्म के मानने वाले हैं। उनका सबपर प्रेम था, और उनके लिए सभी धर्म सच्चे थे। उन्होंने अपना जीवन मतवाद और सम्प्रदाय की छोटी-छोटी सीमाएँ तोड़ने में व्यतीत किया।

सहिष्णुता नहीं स्वीकृति

इसलिए मैं कहता हूँ कि हमारा मूल मंत्र 'बहिष्कार' न होकर 'स्वीकार' होना चाहिए। केवल दूसरे धर्मों के प्रति 'सहनशीलता' ही नहीं, क्योंकि वह किसी-किसी अवसर पर नास्तिकता की ओर ले जाती है। और इसीलिए मेरा उसपर विश्वास नहीं है। मैं 'स्वीकार' को मान्यता देता हूँ। 'सहनशीलता' कहने से मेरा अभिप्राय यह है कि कोई धर्म यदि अन्याय कर रहा है तो मैं कृपापूर्वक उस ओर दृष्टि नहीं लगा रहा हूँ। यदि तुम-जैसा या मुझ-जैसा कोई आदमी किसी की ओर अवहेलनापूर्वक दृष्टि से देखता है तो क्या यह भगवान् को ही दोष देना नहीं है? मैं पिछले सब धर्मों को पूर्ण रूप से मान्यता देकर उनकी पूजा करता हूँ। मैं सब धर्मों के अनुसार ईश्वर की उपासना करता हूँ—चाहे वह किसी भी पूर्णरूप से करते हों। चाहे मैं मस्जिद में नमाज़ पढ़ूँ, चाहे गिरजाघर में क्रास के सम्मुख बैठकर घुटने टेकूँ, चाहे बौद्ध विहार में जाकर महात्मा बुद्ध तथा उनके संघ की शरण लूँ और चाहे मन्दिर में जाकर हिन्दुओं के पास बैठूँ, मुझे किसी प्रकार का सँकोच न होगा।

सच्चा तत्त्व दर्शन

इतना ही नहीं, मैं तो भविष्य में आने वाले धर्मों के लिए भी अपना हृदय-पट खुला रखूँगा। ईश्वर-सम्बन्धी साहित्य अभी समाप्त नहीं हुआ, बल्कि धीरे-धीरे अब भी प्रकाशित हो रहा है। संसार की समस्त आध्यात्मिक पुस्तकें अद्भुत ग्रन्थ हैं। वेद, कुरान, बाइबल आदि अन्य धार्मिक ग्रन्थ उसी ईश्वर के महान् ग्रन्थ के मानो विभिन्न पृष्ठ हैं और उसके अनेक पृष्ठ अभी हमारे सम्मुख प्रकाशित नहीं हुए हैं। अतः अतीत काल में जो कुछ हुआ है, हम उसे ग्रहण करेंगे। वर्तमान में जो भी ज्ञान प्राप्य है, उसका उपभोग करेंगे और भविष्य में होने वाली बातों को ग्रहण करने के लिए अपने हृदय के सब द्वार खोलकर रखेंगे। अतीत के मुनि जनों को प्रणाम, वर्तमान के महापुरुषों को प्रणाम और भविष्य में आने वाली हस्तियों को प्रणाम।

स्त्री शिक्षा

स्त्री शिक्षा—प्राचीन भारत में

हम यह बात समझ नहीं पाते कि जब वेदों के अनुसार सभी प्राणियों में उसी एक आत्मा का विराजमान होना बताया गया है, तो इसी देश में स्त्रियाँ तथा पुरुषों में इतना बड़ा भेद क्यों रखा गया है ? स्मृतियाँ आदि 'ग्रंथ' लिखकर स्त्रियों पर नाना प्रकार के नियमों का बंधन डाल दिया गया है और उसका परिणाम यह है कि आज की स्त्री बच्चे पैदा करने की एक मशीनमात्र रह गई है। अवनति के युग में जब ब्राह्मणों ने अन्य जातियों को वेदों का अध्ययन करने से रोक दिया, उसी समय स्त्री जाति को भी उसके अधिकारों से वंचित कर दिया। इसके विपरीत हम देखते हैं कि वेदों तथा उपनिषदों के युग में मैत्रेयी तथा गार्गी आदि महिलाओं ने तो ऋषियों तक का स्थान ग्रहण कर लिया था। वेदों के ज्ञाता सहस्र ब्राह्मणों की भरी सभा में गार्गी ने याज्ञवल्क्य को ब्रह्मा के बारे में शास्त्रार्थ करने की चुनौती दी थी।

शक्ति-पूजा यथार्थ है

हम देखते हैं कि सभी देश उसी समय उन्नति कर पाये जब

उन्होंने स्त्रियों को उनके योग्य स्थान देकर सम्मानित किया। जो देश अथवा राष्ट्र स्त्रियों का आदर नहीं करते, वे कभी बड़े नहीं हो पाये हैं और न ही कभी हो सकेंगे। वास्तव में शक्ति-पूजक तो वह है जो यह जानता है कि इस विश्व में ईश्वर सर्व-व्यापी शक्ति है—और स्त्रियों में भी उसी शक्ति का प्रकाश समझता है। अमेरिका के पुरुष अपनी महिलाओं को इसी दृष्टि से देखते हैं और उनके साथ सद्व्यवहार करते हैं। यही कारण है कि वे लोग अधिक, सम्पन्न, विद्वान्, शक्तिशाली और स्वतन्त्र हैं। हमारे देश के पतन का मुख्य कारण यह है कि हमने शक्ति की प्रतीक इन सजीव प्रतिमाओं को आदर की दृष्टि से न देखा। मनु महाराज कहते हैं कि जहाँ स्त्रियों का आदर होता है वहाँ देवताओं का वास होता है और जहाँ उनका आदर नहीं होता वहाँ समस्त कार्य तथा प्रयत्न व्यर्थ हो जाते हैं। जहाँ स्त्रियाँ दुःखी तथा उदास रहती हैं, वह घर अथवा देश उन्नति पाने की कोई आशा नहीं रख सकता।

स्त्रियों की शिक्षा से उन्हीं की समस्या सुलझेगी

स्त्रियों की अनेक प्रकार की कठिन समस्याएँ हैं। परन्तु वह सब की सब शिक्षा रूपी जादू के जोर से सुलझ सकती हैं। हमारे मनु महाराज की भी यही आज्ञा है। अर्थात् पुत्रियों का पालन-पोषण तथा उनकी शिक्षा उतनी ही सावधानी एवं तत्परता से होनी चाहिए, जितनी पुत्रों की।' जिस प्रकार पुत्रों का विवाह तीस वर्ष की आयु तक ब्रह्मचर्य के पालन के बाद होना चाहिए, उसी प्रकार पुत्रियों को भी ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करते हुए अपने माता-पिता द्वारा शिक्षा ग्रहण करनी चाहिए। पर क्या वास्तव में हम यही कुछ कर भी रहे हैं? उनको सदा के लिए

असहाय अवस्था में रहने तथा पुरुषों पर निर्भर रहकर दूसरों का दास बना रहने की ही तो शिक्षा दी जाती है । यही कारण है कि एक साधारण से भय या दुःख के सम्मुख आते ही रोने के अतिरिक्तऔर कुछ कर ही नहीं सकतीं। इसके विपरीत स्त्रियों को ऐसी दशा में रखना चाहिए, जिससे कि वे अपनी समस्याओं को स्वयं ही सुलझा लिया करें। भारतीय स्त्रियाँ भी इस दिशा में उतनी ही योग्य हैं जितनी कि संसार की अन्य स्त्रियाँ।

धर्म उसका केन्द्र है

धर्म को केन्द्र मानकर ही स्त्री शिक्षा का विस्तार किया जाना चाहिए। धर्म के अतिरिक्त अन्य शिक्षाएँ गौण रूप से होंगी। धार्मिक शिक्षा, ब्रह्मचर्य-पालन तथा चरित्र-गठन की ओर ध्यान देना चाहिए। हमारी हिन्दू स्त्रियाँ सतीत्व का अर्थ सुगमता से समझ लेती हैं, केयोंकि यह गुण उनके अन्दर परम्परा से चला आ रहा है। उनमें सबसे पहले अन्य गुणों की अपेक्षा यही गुण सुदृढ़ किया जाना जाहिए। ताकि वह चरित्रवान् बन सकें और अपने जीवन को प्रत्येक अवस्था में—चाहे वह विवाहों अथवा अविवाहित (यदि वे अविवाहित रहना ही उचित समझें)—पवित्रता से रत्ती-भर भी न डिगकर हिचकिचाए बिना अपने प्राणों तक का बलिदान देने को तत्पर रहें।

सीता का आदर्श

भारतीय स्त्रियों को सीता के चरित्र का अनुकरण करके ही अपनी उन्नति करनी चाहिए। सीता का चरित्र अति सुन्दर आदर्श है। वह वास्तव में भारतीय नारी की जीती जागती प्रतिमा है

क्योंकि नारीत्व के सब भारतीय आदर्श सीता के ही चरित्र से उत्पन्न हुए हैं। महामहिमामयी सीता परम पवित्र सहनशीलता का आदर्श, सीता भारत की इस विशाल भूमि में सहस्रों वर्ष से बच्चे से लेकर बूढ़े तक का आराध्य देवी बनी हुई है। उसने निश्चित भाव से मुख से किसी भी प्रकार का शोक प्रकट किए बिना इतना दुःखमय जीवन व्यतीत किया है। साध्वी तथा पवित्र स्वभाव वाली वह सीता अपने आदर्श एवं महान् चरित्र के बल पर चिरकाल तक हमारी समस्त जाति की देवी बनी रहेगी। वह सीता हमारे रोम-रोम में समा गई है। हमारी नारियों को आजकल के प्रचलित ढँग में डालने के जो प्रयत्न किये जा रहे हैं, यदि उनको इस ओर लगाकर स्त्रियों को सीता-चरित्र के आदर्श से परे ले जाने की चेष्टा की गई, तो वह सारे प्रयत्न निष्फल हो जाएँगे। इस परिणाम की हम प्रति दिन अपने सामने देखते हैं।

त्याग की शिक्षा

आज कल के इस युग की आवश्यकताओं पर दृष्टि फेरने से यह आवश्यक दिखाई देता है कि स्त्रियों में से कुछ को वैराग्य के आदर्श की शिक्षा दी जाय ताकि वे अपने अन्दर चिरकाल से संचित ब्रह्मचर्य के गुण की शक्ति द्वारा साहस पाकर जीवन-भर कुमारी रहने के व्रत का पालन कर सकें। हमारी पुण्य भूमि को अपनी उन्नति करने में सहायतार्थ अपनी कुछ सन्तानों को पवित्रतापूर्वक ब्रह्मचारी तथा ब्रह्मचारिणी बनाने की आवश्यकता है।

यदि एक भी स्त्री ब्रह्मज्ञान को पा गई तो उसी के तेज के प्रताप से अन्य सहस्रों स्त्रियाँ स्फूर्ति प्राप्त करके सत्य को जानने

के लिए जागरूक हो जाएँगी। इस बात से समाज का बहुत कल्याण होगा।

लौकिक शिक्षा

आवश्यकता इस बात की है कि सुशिक्षित एवं चरित्रवान ब्रह्मचारिणियां शिक्षा के कार्य को अपने हाथ में लें। नगरों तथा ग्रामों में शिक्षा-केन्द्र खोलकर स्त्रियों में शिक्षा का प्रसार करें। ऐसी सचरित्र तथा निष्ठावान उपदेशिकाओं द्वारा अपने देश में शिक्षा का भली प्रकार प्रचार हो सकेगा। स्त्रियों को इतिहास, पुराण, गृह, व्यवस्था, कला-कौशल, गृहस्थ जीवन के कर्तव्य और चरित्र निर्माण के नियमों की शिक्षा देनी होगी। दूसरे विषय, जैसे सीना-परोना गृह-कार्य के नियम, बच्चों का पालन-पोषण आदि बातें भी सिखाई जाएँगी। ध्यान, जप, तप तथा पूजा तो शिक्षा के आवश्यक भाग होंगे। इन गुणों के साथ-साथ उनको शूरता तथा वीरता के भाव भी ग्रहण करने होंगे।

अपनी रक्षा आप

वर्तमान युग में उन्हें आत्म रक्षा के सभी उपायों को सीख लेना अनिवार्य-सा हो गया है। झाँसी की रानी कैसी अद्‌भुत नारी थी। इसी प्रकार हम भारतवर्ष के हित के लिए संघमित्रा लीला, अहिल्याबाई तथा मीराबाई के आदर्श को अपनाने वाली और अपनी पवित्रता, निर्भयता और ईश्वरोपासना द्वारा शक्ति प्राप्त करके वीर माता बनने योग्य महान् आदर्शवान् स्त्रियों को सामने लाएँगे। हमें इस बात का भी ध्यान रखना होगा कि वह समय पर घर की आदर्श माता भी बन सकें। जिन सद्‌गुणों के

कारण यह देवियाँ प्रसिद्ध हैं, उनकी सन्तानें इन्हीं गुणों में और भी आगे निकल जाएँगी। शिक्षित तथा धार्मिक विचारों वाली माताओं के घर में ही महापुरुषों का जन्म होता है।

जब स्त्रियाँ उन्नति प्राप्त कर जाएँगी, तब उनके बालक अपने उदार कार्यों द्वारा देश का नाम ऊँचा करेंगे। फिर तो ज्ञान, शक्ति तथा भक्ति सारे देश में जागरित हो जाएँगी।

जनसमूह की शिक्षा

जब मैं अपने देश के गरीबों तथा निम्न जाति के लोगों की दुर्दशा की ओर ध्यान देता हूँ तो मेरा हृदय फट जाता है। वे दिन-प्रतिदिन गिरावट की ओर जा रहे हैं। निर्दयी समाज उनपर अत्याचार कर रहा है। वह अत्याचार को अनुभव तो करते हैं पर समझ नहीं पाते कि उनपर यह अत्याचार कौन कर रहा है। वह अपने मनुष्यत्व को ही भूल गये हैं। मेरा मन इतना भरा हुआ है कि मैं अपने भावों को प्रकट नहीं कर सकता। जब तक ये करोड़ों मनुष्य भूख तथा अज्ञान में जीवन बिता रहे हैं, तब तक मैं उन तमाम व्यक्तियों को देशद्रोही मानूँगा जो उन के व्यय से शिक्षा प्राप्त करके उनकी ओर ध्यान नहीं देते। जनसमुदाय की इस प्रकार अवहेलना करना हमारा सबसे बड़ा राष्ट्रीय पाप है और यही हमारे देश के पतन का कारण है। राजनीति चाहे कितनी अधिक मात्रा में रहे, परन्तु वह तब तक लाभदायक सिद्ध न होगी, जब तक कि भारतीय जनता एक बार फिर पूर्ण रूप से शिक्षित नहीं हो जाती—जब तक उसे पेट भरने योग्य रोटी न मिले और उसकी उन्नति तथा सुख-सुविधा की ओर ध्यान नहीं दिया जाता।

जनता को शिक्षित बनाना ही एकमात्र उपाय

देश की उन्नति उसी अनुपात से हुआ करती है जिससे उसके समूह में शिक्षा एवं बुद्धि का प्रसार होता है। हमारे देश के पतन का मुख्य कारण यह रहा है कि गिनती के कुछ एक लोगों ने देश की समस्त शिक्षा तथा बुद्धि पर अधिकार जमा लिया है। यदि हम फिर से उन्नति करना चाहते हैं, तो जनसमूह में शिक्षा का प्रसार करके ही हम उन्नत हो सकते हैं। यदि हम वास्तव में दलित वर्ग के लोगों की सेवा करना चाहते हैं तो हमें चाहिए कि उनको अपने खोये हुए व्यक्तित्व को फिर से प्राप्त करने के लिए शिक्षित बनाएँ। हम उनके सामने विचारों को रखें। उनके चारों ओर संसार में क्या हो रहा है—इस विषय की ओर उनका ध्यान फेर दें। फिर वे अपनी मुक्ति का मार्ग स्वयं ढूँढ निकालेंगे। प्रत्येक देश,पुरुष या स्त्री को अपनी मुक्ति का कार्य स्वयं करना होगा। उन्हें बस यही सहायता चाहिए कि उनके सामने विचारों को रख दिया जाय, और इसका परिणाम यह होगा कि शेष बातें वह स्वयं ही जान जाएँगे। हमारा कार्य केवल यह है कि विभिन्न प्रकार के रासायनिक द्रव्यों को एक साथ रख दें फिर उन्हीं द्रव्यों का रवा बनाने का कार्य प्राकृतिक नियमों के द्वारा स्वयं ही परिपूर्ण हो जाएगा।

मेरा विचार है कि हमारे प्राचीन ग्रन्थों में आध्यात्मिकता के जो रत्न विद्यमान हैं और जो कुछ मठों और अरण्यों में छुपे पड़े हैं, इनको सबसे पहले निकालना चाहिए। जिन लोगों के अधिकार में यह रत्न छुपे हुए हैं, केवल उन्हीं के द्वारा इन ज्ञानरूपी रत्नों का उद्धार कराने से कार्य सिद्ध न होगा अर्थात् जिस भाषा में ये सुरक्षित हैं, उस सैकड़ों वर्ष पुरानी भाषा-संस्कृत के जाल से उन्हें बाहर निकालना चाहिए।

इन सत्यों को उनकी समझ के योग्य बना दो

तात्पर्य यह है कि मैं उन्हें सबके लिए सरल बना देना चाहता हूँ। मैं इन तत्त्वों को बाहर निकालकर भारत के प्रत्येक मनुष्य की—अर्थात् सार्वजनिक सम्पत्ति बना देना चाहता हूँ। चाहे वह संस्कृत भाषा जानता हो या न। हमारे इस मार्ग की सबसे बड़ी रुकावट हमारी यह गौरवपूर्ण संस्कृत भाषा ही है। और यह अड़चन तब तक दूर नहीं हो सकती जब तक प्रत्येक भारतीय—यदि यह सम्भव हो तो—संस्कृत का अच्छा विद्वान् नहीं हो जाता। इस कठिनाई को तुम उस समय भली प्रकार समझ सकोगे जब मैं कहूँगा कि जीवन-भर इस संस्कृत का अध्ययन करते रहने पर भी जब से मैं इस भाषा की कोई नई पुस्तक पढ़ने की चेष्टा करता हूँ तो वह सचमुच ही मुझे बिल्कुल नई जान पड़ती है। अब तनिक विचार किया जाय कि जिन व्यक्तियों को कभी विशेष से इस भाषा का अध्ययन करने का अवसर भी प्राप्त न हुआ हो, उनके लिए यह कितनी कठिनाई होगी।

मातृभाषा द्वारा शिक्षा दो

जनसाधारण को उन्हीं की भाषा में शिक्षा देनी चाहिए। उनके सामने विचार रखो—वे स्वयं जानकारी प्राप्त कर लेंगे। पर इसके अतिरिक्त उन्हें संस्कृति देने की भी आवश्यकता है। जब तक उनको संस्कृति न दी जाएगी, तब तक उनकी उन्नति भी कोई स्थायी रूप ग्रहण नहीं कर सकेगी।

संस्कृत-शिक्षा

संस्कृत-शिक्षा भी उनके साथ-साथ चलनी चाहिए। क्योंकि इन भाषा के शब्दों की ध्वनि से ही हमें शक्ति तथा बल प्राप्त होता है। महात्मा बुद्ध की भी यही भूल थी कि उन्होंने जनता में संस्कृत-शिक्षा का प्रसार बन्द कर दिया। वे शीघ्र तथा तत्कालीन परिणाम चाहते थे। इसीलिए उन्होंने उस समय की पाली भाषा में संस्कृत निबन्धों का भाषान्तर करके उनका प्रचार किया। इसका परिणाम बहुत ही सुन्दर हुआ था। चूँकि वह जनता की भाषा में बोलते थे। इसलिए जनता ने भी शीघ्र ही उनकी बातों को समझ लिया था। इस प्रकार उनके भाव बहुत शीघ्र फैलकर दूर-दूर तक पहुँच गए। परन्तु यदि इसके साथ-साथ संस्कृति का प्रचार भी किया जाता तो अच्छा था। जनता को ज्ञान तो प्राप्त हो गया, पर प्रतिष्ठा के बिना। और जब ज्ञान को प्रतिष्ठा नहीं दी जाती, तब एक और जाति उत्पन्न हो जाती है जो कि संस्कृत भाषा को जानने के कारण शीघ्र ही दूसरों की अपेक्षा ऊँची उठ जाती है।

राष्ट्र झोंपड़ियों में है

हमें यह याद रखना चाहिए कि राष्ट्र का वास झोपड़ियों

में होता है। आज के युग में हमारा कर्त्तव्य है कि हम देश के एक कोने से लेकर दूसरे कोने तक भ्रमण करके गाँव-गाँव में जाकर लोगों को समझाएँ कि अब आलस्य में पड़कर केवल बैठे रहने से कोई लाभ न होगा। उन्हें उनकी वास्तविक दशा का परिचय देकर कहें, "भाइयो, सब लोग उठो और चिर निद्रा से जागो।" हम जाकर उनकी अपनी अवस्था सुधारने की अनुमति दें और शास्त्रों की बातों को सरल स्वभाव से समझाते हुए उन सत्यों का ज्ञान कराएँ। उनके मन में यह बात बिठा देनी होगी कि धर्म पर उनका भी उतना ही अधिकार है जितना ब्राह्मणों का, सब प्राणियों को—चंडाल तक को भी—इन मन्त्रों का उपदेश देकर उन्हें सरल शब्दों में जीवनोपयोगी विषयों तथा व्यापार और खेती-बाड़ी की शिक्षा भी देनी चाहिए।

जीवन को प्रत्येक ओर से आध्यात्मिक बना दो

शताब्दियों से ऊँची जाति वालों, राजाओं तथा विदेशियों के अनेक अत्याचारों के कारण उनकी सब शक्तियाँ नष्ट हो गई हैं, और अब पुनः शक्ति प्राप्त करने का एक मात्र उपाय है शास्त्रों का आश्रय, और उनमें इस विश्वास का पैदा होना कि "मैं आत्मा हूँ, मुझे तलवार काट नहीं सकती, मुझे न शस्त्र छेद सकता है, न अग्नि जला सकती है और न वायु सुखा सकती है। "मैं शक्ति-सम्पन्न तथा सर्वदर्शी हूँ," वेदों के इन महान् सिद्धान्तों को अब वनों और गुफाओं से बाहर निकालकर न्यायालयों, मन्दिरों तथा झोंपड़ियों में प्रविष्ट करना होगा। अब तो मछली पकड़ते हुए मछुओं और विद्योपार्जन करते हुए विद्यार्थियों के साथ इन सिद्धान्तों को चलाना होगा। ये सन्देश प्रत्येक नर-नारी तथा

बच्चों के लिए हैं—चाहे वह कहीं भी रहते हों और कोई भी व्यवसाय करते हों। प्रश्न हो सकता है कि ये मछुए आदि किस प्रकार उपनिषदों के सिद्धान्तों के अनुसार कार्य कर सकते हैं। इसका कार्य भी बता दिया गया है। यदि मछुआ सोचे कि "मैं आत्मा हूँ" तो वह एक अच्छा मछुआ बनेगा और यदि विद्यार्थी इस बात का ध्यान रखे कि वह आत्मा है तो वह एक श्रेष्ठ विद्यार्थी बनेगा।

शिक्षा का प्रचार घर-घर होना चाहिए

भारतवर्ष में सभी बुराइयों की जड़ केवल गरीबों की दुर्दशा है। यदि गाँव में निःशुल्क पढ़ाई के लिए एक पाठशाला खोल भी दी जाय, तो भी उससे कोई विशेष लाभ न होगा। क्योंकि गरीब लड़के तो पाठशाला में जाने की बजाय कहीं अधिक अच्छा समझेंगे कि अपने पिता के साथ खेतों में काम करके जीविका के लिए उनकी सहायता करें। यदि प्यासा कुएँ के पास नहीं आता, तो कुआँ ही प्यासे के पास क्यों न जाय! यदि गरीब बालक शिक्षा लेने नहीं आ सकता तो शिक्षा को ही उसके पास पहुँच जाना चाहिए। हमारे देश में असंख्य तेजस्वी तथा स्वार्थ-त्यागी संन्यासी हैं जो गाँव-गाँव में धर्मोपदेश देते फिरते हैं। यदि उनमें से कुछ एक को ही भौतिक विषयों की शिक्षा देने के लिए संगठित किया जा सके तो वे एक स्थान से दूसरे स्थान को, एक घर से दूसरे घर को न केवल धर्मोपदेश देते हुए बल्कि शिक्षा का कार्य करते हुए फिरेंगे। यदि इनमें से दो व्यक्ति संध्या समय किसी गाँव में अपने साथ जादू की लालटेन, दुनिया का गोला और कुछ नक्शे इत्यादि लेकर जाएँ तो वह उन अरनजान गाँववासियों को बहुत-सा ज्योतिष तथा भूगोल सिखा सकते हैं। जो जानकारी

गरीबो को जन्म-भर पुस्तकें पढ़कर प्राप्त होती, उससे कहीं सौ-गुना अधिक जानकारी वह कानों द्वारा विभिन्न देशों की कहानियाँ सुनकर प्राप्त कर सकते हैं। वर्तमान विज्ञान की सहायता से तो उनके ज्ञान को और भी बढ़ाया जा सकता है। उन्हें इतिहास, विज्ञान, भूगोल तथा साहित्य पढ़ाओ और इन्हीं के द्वारा उनको धर्म के गम्भीर सत्यों की शिक्षा भी दो।

वे लोग अपने जीवन-संग्राम में इतने उलझे हुए हैं कि उन्हें ज्ञान प्राप्त करने का या उसे बढ़ाने का समय ही नहीं मिल पाता। वे आज तक मशीन की भाँति कार्य कर रहे हैं और शिक्षित लोग उनके परिश्रम के फल के एक बड़े भाग को स्वयं भोग रहे हैं। परन्तु अब समय बदल गया है। निम्न श्रेणी के लोग अब इस विषय में जाग रहे हैं, और सामूहिक रूप से इसका विरोध हो रहा है। अब ऊँचे वर्ग वाले उनको नीचे दबाकर नहीं रख सकते, चाहे वह कितना ही प्रयत्न क्यों न करें। ऊँचे वर्ग वालों का भला अब इसी बात में है कि वह निचले वर्ग के लोगों को अपना वास्तविक अधिकार प्राप्त करने में सहायता दें। इसलिए मैं कहता हूँ कि जनसमूह का शिक्षित बनाने के कार्य में जुट जाओ और उन्हें बता दो कि वह भी हमारे भाई अथवा हमारे शरीर का अंग हैं। यदि तुम उनको उतनी ही सहानुभूति दे सको, तो उनका काम करने का हौसला कई गुना बढ़ जाएगा।

महान् सफलता के लिए अनुभव आवश्यक

महान् कार्य करने के लिए तीन बातें आवश्यक होती हैं। पहली आवश्यकता है हृदय—अर्थात् अनुभव की शक्ति। बुद्धि अथवा विचार-शक्ति का इतना महत्त्व नहीं है। वह तो थोड़ी-सी परिधि में सीमित है। परन्तु हृदय महाशक्ति का मानो द्वार है।

हमारे अन्दर स्फूर्ति वहीं से आती है। प्रेम द्वारा असम्भव को सम्भव बनाया जा सकता है और यह प्रेम ही जगत् के समस्त रहस्यों का द्वार है। इसलिये मैं अपने भावी सुधारकों और देश-भक्तों को संबोधन करके कहता हूँ कि "तुम हृदयवान् बनो। क्या तुम्हारा हृदय अनुभव करता है कि देव तथा ऋषियों की करोड़ों सन्तानें पशुओं के समान बन गई हैं? क्या तुम्हारा हृदय इस बात को ग्रहण करता है कि लाखों व्यक्ति इसी प्रकार भूख से मर रहे हैं और चिरकाल से मरते चले आ रहे हैं? क्या तुम्हें अनुभव होता है कि आज सारे भारतवर्ष को अज्ञान के गहरे काले बादलों ने ढक लिया है? क्या सब यह सोचकर तुम्हें रोमांच हो जाता है? क्या इस भावना ने तुम्हारी निद्रा छीन ली है? क्या यह भावना तुम्हारे रक्त के साथ मिल कर तुम्हारे रोम-रोम में बनती है? क्या वह तुम्हारे मन की धड़कनों के साथ मिल गई है? क्या उसने तुम्हें पागल सा बना दिया है? क्या देश की इस दुर्दशा का चिन्तन करना ही तुम्हारा एकमात्र विषय बन गया है? और क्या तुम इसी चिन्ता में इतने ग्रस्त हो गये कि अपने मान-अपमान, नाम-यश, बाल-बच्चे, धन-सम्पत्ति और अपने शरीर तक की सुध लेना भी भूल गये हो? क्या तुम सचमुच ही ऐसे बन गए हो?" बस, यही पहली आवश्यकता है।

उपाय

मैं मानता हूँ कि तुम ये सब कुछ अनुभव करते होगे। पर मैं पूछता हूँ कि क्या तुमने व्यर्थ की बातों में समय नष्ट करके इस दुर्दशा को परे हटाने के लिए अपने लिए कोई कर्त्तव्य भी निश्चित किया है? क्या अपने देशवासियों को इस बुरी अवस्था से बाहर निकालने के लिए कोई मार्ग या उपाय भी सोचा है? परन्तु इतने

ही में काम न चलेगा। क्या तुम घोर कठिनाइयों तथा विघ्न-बाधाओं पर विजय प्राप्त करके कार्य करने को तैयार हो ?

सच्ची लगन

यदि सारा संसार हाथ में नंगी तलवार लेकर तुम्हारा विरोध करने पर उतारू हो जाय, तो भी क्या तुम उस बात को पूरा करने का साहस करोगे जिसे तुम सत्य समझते हो ? यदि तुम्हारे स्त्री-पुत्र ही तुम्हारे विरुद्ध हो जायें, भाग्य तुमसे रूठ जाय, नाम-कीर्ति भी मिट जाय, तो भी क्या तुम उस सत्य का साथ न छोड़ोगे ? फिर भी क्या तुम उस सत्य के पीछे लगे रहकर अपने लक्ष्य की ओर निरन्तर बढ़ते रहोगे ? जैसे कि राजा भर्तृहरि ने कहा है, "चाहे नीतिवान् मनुष्य तुम्हारी प्रशंसा करें चाहे निन्दा, लक्ष्मी तुम्हारे पास आए अथवा इच्छानुसार कहीं और चली जाए, मृत्यु आज आए चाहे सौ वर्ष बाद, धीर मनुष्य तो वह जो न्याय (सत्य) के पथ से ज़रा भी नहीं हटता। क्या तुम्हारे अन्दर ऐसी दृढ़ता है ? यदि तुम्हारे अन्दर यह तीन बातें हैं तो तुमसे प्रत्येक व्यक्ति अनुपम सुन्दर कार्य करा सकता है।"

कर्म ही पूजा है

आओ, हम यह प्रार्थना करें 'कृपामयी ज्योति, हमें मार्ग दिखाओ !" और अन्धकार में से एक किरण दिखाई देगी—कोई पथ-प्रदर्शक हाथ आगे बढ़ाएगा और हम सब दिन-रात करोड़ों दरिद्र भारतीयों के लिए प्रार्थना करें जो गरीबी के जाल में फँस-कर ब्राह्मणों के छल तथा अनेक प्रकार के अत्याचारों में जड़े हुए हैं। उन्हीं के लिए दिन-रात प्रार्थना करें। मैं उच्च जाति वालों

तथा धनाढ्य पुरुषों की अपेक्षा इन लोगों को उपदेश देने की अधिक चिन्ता किया करता हूँ। न तो मैं कोई दार्शनिक हूँ, न कोई तत्त्ववेत्ता और न ही सन्त हूँ। परन्तु मैं तो दरिद्र होने के नाते दरिद्रों से ही प्यार करता हूँ। दरिद्रता तथा अज्ञान के अंधकार में फँसे हुए इन बीस करोड़ नर-नारियों के कष्टों को कौन अनुभव करता है? जो व्यक्ति इन दरिद्रों के दुःखों को अनुभव करते हैं, उन्हीं को मैं महात्मा मानता हूँ। किस हृदय में उनके दुःखों की पीड़ा अनुभव होती है? न तो उन्हें कहीं ज्ञानरूपी प्रकाश मिलता है और न ही शिक्षा। कौन उन्हें प्रकाश देगा? कौन उन्हें शिक्षा प्रदान करने के लिए घर-घर भटकता फिरेगा? तुम इन्हीं दुःखी जनों को अपना ईश्वर मानकर निरन्तर उन्हीं का ध्यान करो।, उन्हीं के लिए कार्य करो और उनके लिए ही निरन्तर प्रार्थना करो। ईश्वर तुम्हारा मार्ग-प्रदर्शन करेगा।

□□